

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180514

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—901—26-3-70—5,000

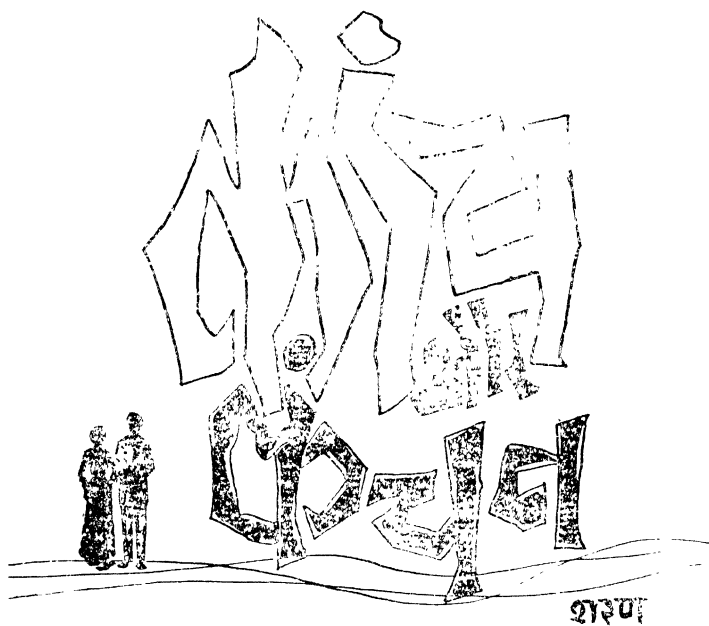
OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. *H.83/S53K* Accession No. *H-3577*

Author *अरुण*

Title *कांच अथवा अंध*

This book should be returned on or before the date last marked below.



अमेश प्रकाशन

५. नाथ मार्केट, नई सड़क, दिल्ली ६



प्रकाशक

● उमेश प्रकाशन,
५, नाथ मार्केट, नई सड़क, दिल्ली-६.

मुद्रक

● हरिहर प्रेस,
चावड़ी बाजार, दिल्ली

संस्करण

● मार्च, १९६२
(प्रथम संस्करण)

मूल्य

● तीन रुपये

दो शब्द

हमारे आज के सामाजिक संबंध ठीक वैसे नहीं रहे, जैसे आज से पचास वर्ष पूर्व थे। सभ्यता के बढ़ते चरण संबंधों की सरलता को कृत्रिमता के आवरण से ढकते जा रहे हैं। ऐसे में यदि व्यक्ति का हिता-हित-विवेक दिगभ्रमित हो जाय, तो आश्चर्य ही क्या ?

‘काँच और कँचन’ उपन्यास में आज के समाज के इसी स्तर का चित्र उपस्थित किया गया है। उपन्यास का नायक ‘जीवन’ एक सरल प्राणी है जो मन के सहज आकर्षणों को स्वीकार करता है और ‘स्नेह’ नाम की एक तरुणी के मोहपाश में बद्ध हो जाता है ; किन्तु परिस्थितियाँ उसे ‘स्मृति’ नाम की युवती के साथ विवाह करने को विवश कर देती हैं। यह एक ऐसी स्थिति है, जहाँ आकर भावुक हृदय जीवन घोर अन्तर्द्वन्द्व से ग्रस्त होता है। एक ओर तो मन में उठ रही मरोड़ है, हृदय का दाह है और दूसरी ओर पवित्र वेदी की सात परि-
क्रमाएँ करके खायी गयी शपथ।

प्रश्न मात्र जीवन का नहीं, हम सब का है। क्या यही वे स्थितियाँ नहीं हैं, जो हमारे मन में कुण्ठाओं को जन्म देती हैं ? क्या यही वह स्थल नहीं है, जहाँ हम औचित्य की सीमाओं को फूँक मार कर उड़ा देते और खुल कर खेलने को विवश हो जाते हैं ?

पर बात यहीं समाप्त नहीं हो जाती। इसी के साथ कुछ अन्य प्रश्न भी जन्म लेते हैं। जैसे, क्या हमारी कुण्ठाओं का कारण मात्र ‘पवित्र प्रेम’ है, वासना नहीं ? क्या औचित्य की सीमाओं को बिसरा कर किया

गया कार्य उपर्युक्त समस्या की सम्पूर्ति है ? सबसे बड़ा प्रश्न तो यह कि औचित्य है क्या ? मन का मोह, या तन की स्वीकृति ?

ऐसा नहीं है कि इन प्रश्नों के कोई उत्तर न हों । समय के दुलक रहे पहियों के साथ-साथ वस्तु-स्थिति पर पड़े आवरण एक-एक कर खुलते जाते हैं और अन्त में सत्य अनावृत हो ही जाता है । 'काँच और कँचन' में परिस्थिति की विशिष्टता के परिवेश में उस समस्या के समाधान की पूर्ण चेष्टा की गयी है और इसमें उन्हें सफलता मिली है ।

श्री शरण हिन्दी उपन्यास जगत के लिये नये नहीं हैं । उनके कृतित्व पर प्रकाश डालना मेरे लिए अधिक सम्भव नहीं है; क्योंकि अपने व्यक्तिगत संबंधों के कारण मैं उनके विषय में असम्पृक्त रह ही कैसे सकता हूँ ? फिर भी मुझे आशा है, उपन्यास-जगत का प्रबुद्ध वर्ग इसे चाव से पढ़ेगा ।

१ मार्च, १९६२

भगवतीप्रसाद वाजपेयी

व्यास नदी हिमालय शृङ्खलाओं के बीच इस प्रकार मुँह छिपाये हुए थी जिस प्रकार स्वच्छ एवं कोमल हृदय में साहस और उत्साह की मध्यम ज्योति छिपी रहती है। इसी की गोदी में समुद्र तल से लगभग २५०० फुट की ऊँचाई पर एक बड़ी रियासत है मंडी, जोकि प्राचीन शिवालयों और ऐतिहासिक खंडहरों के लिए विशेष प्रसिद्ध है। कितने ही भक्तजन, इतिहासिज्ञ और प्रकृति प्रेमी इस पहाड़ी-जन जातियों की सर्वोत्कृष्ट भूमि पर बड़े प्रेम एवं श्रद्धा के साथ आते और यहाँ का बूढ़ा केवट मंगलू चौधरी शिवालयों की परिक्रमा कराता, देवी देवताओं की स्तुति का बखान करता, अवशेषों के अतीत को वर्तमान का रूप देता और फिर नौका विहार करते हुए भूलते पुल की ओर संकेत कर उस प्रेमी दम्पति की कहानी को छेड़ बैठता, जिसे जमाने ने एक नहीं होने दिया था ; किन्तु व्यास की पवित्र गोदी में अवश्य वे एक हो गये थे। इसके बाद एक दीर्घ श्वास छोड़ वह वैसे ही शांत हो जाता जैसे कोई भूक तपस्वी साधना में लीन हो जाता है। सुनने वालों को कदाचित् इन बातों पर विश्वास तो न आता था ; किन्तु उसकी सहृदयता एवं अनु-राग के वे अवश्य कायल हो जाते थे। मैं भी उन्हीं में से एक था। अव-काश मिलते ही स्नेह के साथ मंगलू चौधरी के पास आ जाता नौका विहार करने के लिए, उसकी बातों को सुनने के लिए। कितनी ही संध्या उसके सम्पर्क में बीतीं ? कितनी ही बार उसने पहाड़ी फूलों के गुलदस्ते बनाकर स्नेह को उपहार स्वरूप दिए ? इतना ही नहीं दिनभर में जो

पहाड़ी फल वह तोड़कर लाता, उनमें जो सबसे अच्छे होते, संध्या को हम चखते। उसका कितना स्निग्ध स्नेह था हमारे प्रति ? कितनी उत्सुकता से हमारी राह देखा करता था हर संध्या को ? कदाचित् वह हमें अपना आसरा समझ बैठा था और परदेश में वही हमारा शुभ चिन्तक है, उसके दैनिक व्यवहार से हमें ऐसा प्रतीत होने लगा था। परन्तु आज तक उसने जीवन परिचय पर रोशनी नहीं डाली थी। दूसरों से इतना अवश्य मालूम हुआ था कि यह भी बाल बच्चों वाला था, मगर वे सब उसे अकेला छोड़कर कहाँ चले गये ? ऐसे आदर्शवादी पुरुष का साया उन्हें क्यों पसन्द नहीं आया ? इसे कोई नहीं बता सका। सच तो यह है कि मंगलू चौधरी मंडी निवासियों और आस-पास के पहाड़ी लोगों के लिए किसी बड़े महात्मा से कम नहीं था ? वह उनके हर प्रकार के दुःखों का निवारण करता, उनके आपसी झगड़ों का फैसला करता और इसके साथ ही अनेक जड़ी बूटियों द्वारा अनेक रोगों का इलाज भी। इसके सिवा वहाँ के अधिकांश लोग और कुछ उसके विषय में नहीं जानते थे। बच्चों से लेकर बूढ़े तक सभी उसे बाबा कह कर पुकारा करते थे। मंगलू चौधरी भी उन्हें अपने आत्मीयों से कम नहीं समझा करता था। सच पूछो तो वही उसके सब कुछ थे, जिनकी स्नेह धारा में अतीत की स्मृतियाँ बह चुकी थीं।

स्नेह और मुझे भी चौधरी से कम प्यार नहीं था। जो कुछ भी अच्छी चीज़ घर बनती, उसमें बाबा का हिस्सा अवश्य होता और जब तक वह खा नहीं लेता तब तक स्नेह को किसी भाँति चैन नहीं पड़ती थी। आपस में इतना स्नेह होते हुए भी वह कभी-कभी तो उसकी बातों से इतना ऊब उठती थी कि उसके मुख से निकल जाता, “बाबा ! इसके सिवा और कुछ कहने के लिए नहीं है क्या, पुराना राग सुनते-सुनते तो कान पक गये ?”

उसके उत्तर में चौधरी का स्वच्छंद परिहास घाटियों में गूँज उठता, कहता, “नया पुराने से ही आता है बिटिया।” इतना सुनकर स्नेह के

पतले होठों पर हास्य की पतली सी रेखा अंकित हो जाती और फिर निस्व के कार्यक्रम में समय बीत जाता ।

कितने गहरे विचार थे उसके ? स्नेह के सम्पर्क में रह कर तो मैं उनका आशय न समझ सका था ; पर आज उससे विमुख होकर समझने का अवश्य प्रयत्न कर रहा हूँ । जीवन से कुछ मोह हो चला है इसीलिए व्यास की पवित्र लहरें मुझे अपने साथ ले जाने के लिए तैयार नहीं, या यूँ कहिए कि जीवन में कदाचित् कोई और नया मोड़ आना हो । कुछ भी समझिये, असीम् वेदना को सह कर भी मैं आज जीवित हूँ । ऐसा क्यों कर रहा हूँ ? किस आकर्षण ने मुझे आकर्षित कर लिया है ? पग किस ओर को बढ़ना चाहते हैं ? मन कहाँ ले जाना चाहता है ? और हृदय किस के विषय में सोचने के लिए लालायित है ? तूफानमेल में बैठकर भी मैं न समझ सका । आखिरी बार बाबा के दर्शन की इच्छा अवश्य थी ; पर वह पूरी न हो सकी, इसका मुझे दुःख रहा अवश्य और रहेगा भी, इसका कारण है उसकी आत्मीयता और स्नेह की स्निग्धता ।

कितने ही घंटों की लम्बी यात्रा के बाद तूफान ने अगले दिन संध्या के चार बजे दिल्ली ला पटका ? प्लेटफार्म पर विशेष चहल-पहल थी । यात्री अपना-अपना सामान ठीक कर उतर रहे थे । रेलवे की लाल कमीजों पर नम्बर की पट्टियाँ बाँधे कम्पार्टमेंट की खिड़कियों में से सवारियों का सामान उतारने में लगे हुए थे कुली लोग । मैं भी कम्पार्टमेंट से उतरा, टिकट मेरे पास नहीं था, भीड़ में ही मेन गेट की ओर बढ़ गया, बाहर निकलने में विशेष कठिनाई नहीं हुई यानी टिकट चेकर की आँखों में धूल भोंकने में मैं सफल हुआ; मगर आन्तरिक खुशी नहीं हुई, जबकि विद्यार्थी-जीवन में हम हमेशा ऐसा कर फूले नहीं समाते थे ।

स्टेशन के बाहर ही गन्तव्य स्थान के लिए तांगा किया । कुछ दूर चलने पर ही आज की दिल्ली में और ६ वर्ष की दिल्ली में जमीन

आसमान का अन्तर का पता चल गया। उसकी सुन्दर पटरियों पर खोके बन गये थे, जोकि अगूठे और निराले थे। उन में से निकलता हुआ भट्टियों का धुआँ, तली हुई मछली की दुर्गन्ध, ग्रामोफोन पर चढ़े हुए तबे की तीखी आवाज, उनमें बैठे हुए लोगों के भद्दे अल्फाज सुनाई पड़ रहे थे। इन सबको पीछे छोड़ता हुआ ताँगा फव्वारे की ओर बढ़ रहा था और मैं सोचने में लीन हो गया था उस परिवार के विषय में, जिससे ६ वर्ष पूर्व हमेशा के लिए किनारा किया था। भाई-भाभी और माता-पिता के अलावा भी किसी और की स्मृति मानस पटल पर छा गई थी, ऐसी सलोनी छवि आँखों के सामने नाचने लग गई थी, जिस का सामिप्य ग्रहण करके भी मैं उसके लिए निष्ठुर बन चुका था। जिसको सधवा होते हुए भी मैंने विधवा की उपाधि से सुशोभित कर दिया था और जिसके घरमानों की कलियों को मैंने खिलने से पूर्व ही कुचल दिया था। वह थी अभागिन स्मृति।

कदाचित् उसने मेरे बच्चे को जन्म भी दे दिया हो, निश्चय से कुछ कहा नहीं जा सकता; क्योंकि नौ वर्ष की इस लम्बी अवधि में अपने परिवार के विषय में, अपने आत्मीयों के विषय में, कुछ भी नहीं जान पाया था। कौन-कौन उनमें जीवित है और कौन-कौन राम को प्यारा हो गया है; किन्तु इतना विश्वास अवश्य है कि स्मृति जीवित है ? उसने इस अवधि को कैसे काटा है, जीवन के इस नये मोड़ पर खड़े होकर वह किस विचार-धारा में बही है, मेरी मृत्यु के समाचार पर उसे विश्वास हुआ है या नहीं, इस बात पर भी विचार नहीं किया जा सकता।

विगत स्मृतियाँ कल की ही बात की तरह मेरे मानस पटल पर से उतरती चढ़ती जा रही हैं और ताँगे वाला बीड़ी का कड़ुवा धुआँ छोड़ता हुआ, दायें हाथ से लगाम सम्भाले, दायें हाथ से घोड़े की पीठ पर हंटर बजाता हुआ, लाल किले की सामने वाली सड़क पर बढ़ाये लिए जा रहा है। सड़क के दोनों ओर मैदानों में हरी-हरी दूब पर लोग और बच्चे बैठे घूप का आनन्द ले रहे हैं। कड़ाकेदार मूँगफलियाँ, मसालेदार सेव और आलू

छोले गरम वाली ध्वनियाँ वैसी ही सुनाई दे रही हैं जैसी कि हम इन मैदानों में अपने साथियों के साथ क्रिकेट खेलते हुए सुना करते थे। वे बचपन की बातें थीं, उसी के साथ खत्म सी प्रतीत हुईं। हाँ, वह संघ्या अवश्य याद आ गई, जबकि मेरी बारात गाजे बाजे के साथ इसी सड़क पर से होती हुई पहाड़ी पर पहुँची थी। बारात की रौनक बढ़ाने के लिए किसी बात की कमी नहीं रखी गई थी। नपौरी वाले, ताँसे वाले, नाचने वालों से लेकर अँग्रेजी बाजा बजाने वालों की संख्या भी इक्यावन से कम नहीं थी। फिर ऊपर से आतिशबाजी के रंग बिरंगे फायर चाँदनी चौक से पहाड़ी तक खूब छोड़े गये थे। कितनी शान की बारात चढ़ी थी मेरी? पिताजी ने पानी की तरह पैसा बहाया था। आखिर ठाकुर गजराजसिंह के इंजीनियर बेटे का ब्याह था। समधी भी ठाठ का मिला था। शाही खानदान से उसके पूर्वजों का सम्बन्ध चला आ रहा था। वैसे तो लक्ष्मी की कृपा सदैव से ही रही थी, मगर द्वितीय महायुद्ध में ठेकेदारी में अच्छी खासी रकम इकट्ठी कर ली थी। खर्च का मौका आया था इकलौती बेटी की शादी पर। पैसे के बल पर ठाकुर के काबिल बेटे को जमाता बनाया जा रहा था। दोनों ही अपनी नाक को सम्भाले हुए थे। दोनों की ही थैलियों के मुँह खुले थे। सच पूछो तो दोनों के ही सम्मान के ढोंग ने मेरी जिह्वा पर ताला डाल दिया था और एक अभागिन के जीवन को बर्बाद करने का श्रेय जबरदस्ती मुझे दिया गया था।

ऐसी विकट परिस्थिति में मेरे साथ किसी की सहानुभूति थी तो वह थी मेरी भाभी की। उसी के सम्मुख अपने हृदय को खोल कर रख सका था। इस विवाह को रोकने के लिए भी उसी से अनुनय की थी। उसी के आगे रोया और गिड़गिड़ाया भी था। किन्तु मुझे सहारा देने वाली अबला थी, जिसका समाज में कोई अस्तित्व नहीं समझा जाता। उसने प्रयत्न किया। उसके द्वारा मिला हुआ आश्वासन कच्चे धागे में बंधा मेरे सामने झूलता रहा और मैं मूर्ख उस पर भावी जीवन के स्वप्न देखने लगा। वह स्वप्न चकनाकूर तब हुए, जब शैया पर लेटे हुए मैंने पिता

जी की कर्कश ध्वनि सुनी, “कहाँ हैं जीवन, तैयार हुआ या नहीं, लोग आने लगे हैं ?” यह ध्वनि उसी गोली के समान थी, जो भटके के साथ छूट कर किसी की जीवन लीला समाप्त कर देती है। अब सोचने के लिए भी समय नहीं रह गया था और न ही सम्बन्धियों की दृष्टि से बचकर भाग सकता था। वास्तविकता तो यह थी कि जब से भाई साहब द्वारा पिता जी के पास मेरी विवाह की अस्वीकृति की सूचना पहुँची थी तभी से मैं राजनैतिक बंदी की तरह नजरबंद कर दिया गया था। इस अवस्था में मेरे सम्पर्क में आने वाली थी मेरी भाभी लक्ष्मी। उस बेचारी को भी मेरे कारण क्या-क्या सुनना पड़ा था ? किन-किन तीक्ष्ण बाणों को उसे सहना पड़ा था ? पति-पत्नी का आपसी संघर्ष भी हुआ था, उसका अनुमान मैंने उसके कुम्हलाये चेहरे से लगा लिया था। वह मेरे कारण दुःखी थी; पर थी विवश। जो कुछ वह कर सकती थी, जो कुछ किसी से कह सकती थी, वह उसने किया; किन्तु परिणाम निकला ढाक के तीन पात।

मुझे तैयार करने के लिए भी उसी को आना पड़ा। कितने सरल स्वभाव से उसने कहा था, “कुर्बानी के लिए तैयार हो जाओ भैया।” और फिर उसकी बड़ी-बड़ी आँखों से अश्रु ढुलक आये थे। गला भरने लगा था। मुझ से अपनी हीनता को छिपाने के लिए उसने मुँह फेर आँचल का सहारा लिया था। मैंने अपनी व्यथा को छिपा कर पूछा था, “रो रही हो भाभी, मुझ नराधम के लिए।” उत्तर के स्थान पर दबी हुई सिसकी की ध्वनि कानों में अवश्य पड़ गई थी। कुछ क्षणों के उपरांत मुझे तैयार होना पड़ा था। घोड़ी पर चढ़ने से पूर्व भाभी ने आँखों में काजल डालते हुए कहा था, “दक्षिणा में केवल रुपये ही नहीं लूंगी भैया।”

“और क्या लोगी भाभी !” आश्चर्य-मिश्रित स्वर में मैं पूछ उठा।

“समय आने पर स्वयं मांग लूँगी।”

“अच्छी बात है, थोड़ी सी दक्षिणा अवश्य थाली में डाले देता हूँ।” इतना कह कर मैंने एक सौ का नोट थाली में रख दिया। उसे पाकर भाभी के हृदय में कैसे-कैसे विचार उठे, उन्हें समझने का मुझे अवसर

नहीं दिया गया ? अपनी विवशता पर मन ही मन में अश्रु बहाता हुआ, कितनी ही रस्मों को पूरा कर कानून की दृष्टि में अपने को अपराधी बना बैठा ? उसका दंड किस-किस को मिलेगा ? उसका क्या रूप होगा ? यह सोचते हुए मेरा पुरुष मन कम्पित हो उठता था । आज वह मुझे मिल चुका है । उसी से घबड़ा कर पुनः मैं घर की सुघ ले बैठा हूँ ।

पहाड़ी पर बारात की आशा से अधिक आवभगत की गई और मुझे द्वार-चार के उपरांत वेदी पर बिठा दिया गया । स्मृति को गुलाबी परिधानों में सजा कर मेरे पास बिठाया गया । पंडितों ने उच्च स्वर में मंत्रों का उच्चारण करना आरम्भ किया । बीच-बीच में मुझसे भी उन्होंने क्या-क्या कहलवाया, क्या-क्या प्रतिज्ञायें करवाईं, वे तो स्मरण नहीं, कदाचित् स्मृति को याद रही हों, उन पर उसने चलने का प्रयत्न किया हो, इस पर भी मैं अपना मत नहीं दे सकता । हाँ, मैं अवश्य अपनी प्रतिज्ञाओं को भूल गया था, अग्नि को साक्षी समझ जो कुछ मैंने स्मृति को वचन दिए थे, उन्हें मेरा पापी मन पूरा न कर सका, इस बात का दुःख मुझे तब न था, अब है, ऐसा कर मैंने एक अबला के साथ अन्याय किया था और आज उसका दंड पाने की इच्छा मन में प्रबल हो उठी है । उसे देने का अधिकार केवल एक को है, वह है अबला की प्रतीक स्मृति । जिसने मुझ पापी के अत्याचारों को मूक बन कर सहन किया । वास्तव में वह सहन-शीलता की देवी है । तभी तो लम्बी अवधि के उपरांत उसकी धुंधली छवि फिर से मेरे मानस पटल पर अंकित हो गई है ।

अब ताँगा फँज बाजार की पीछे की सड़क पर जा रहा है । आस पास की इमारतें तो वैसी ही हैं, मगर स्कूली इमारतों में अवश्य अन्तर आ गया है । खालसा और संस्कृत स्कूल का भवन बढ़ता चला जा रहा है । जब मैं संस्कृत स्कूल का विद्यार्थी था, उस समय वह इतना बड़ा नहीं था, बाग-वगीचा भी विशेष नहीं था; किन्तु पहले और अब में आकाश-पाताल का अन्तर है । तभी ताँगे वाले ने विचार धारा को तोड़ते हुए पूछा, "किधर चलूँ बाबू जी ?"

“बाईं ओर ले चलो,” मेरे मुख से निकला। सहसा मेरी दृष्टि सामने की इमारत पर पड़ी। वह रंग-बिरंगी बिजली के प्रकाश से युक्त थी और रिकार्ड बज रहा था सुहाग का। कदाचित् किसी की कन्या का विवाह था ?

गौरा ! बनड़ा है रस बनड़ा, नया नवेला है अलवेला।

री मैं नाय जानूँ कस्तूरी होके लागा।

ये तो अरगजा होके लागा।

इतना ही सुन सका मैं। तांगा आगे बढ़ गया था। इन पंक्तियों में मुझे वह समय याद आ गया। जब स्मृति के घर, ढोलक की सुमधुर ध्वनि में कितने ही कोकिल कंठ मुखरित हो उठे थे ?

कुछ दूर आगे बढ़ने पर तांगा दाईं ओर को मुड़ मेरे संकेत से गली नम्बर ४ के आगे रुक गया। उसका भाड़ा चुका कर घर की ओर बढ़ा। गली में बच्चे गेंद से खेल रहे थे। उसी समय आँखों पर ऐनक चढ़ाये एक भद्र पुरुष मेरे पास से गुजरे। वे फाइन आर्ट्स प्रेस के व्यवस्थापक शास्त्री जी थे। मैंने उन्हें नमस्कार किया और उत्तर भी मिला, पर वे मुझे पहचान नहीं सके हैं, ऐसा आभास हुआ। इसका कारण था मेरा विकृत चेहरा। कुछ देर तक मैं खड़ा बच्चों के खेल को देखता रहा। मुझे ऐसा लग रहा था कि इनमें स्मृति और लक्ष्मी का दुलारा भी अवश्य होगा। मेरे लिये पहचानना असम्भव था; क्योंकि वे मेरी कल्पना के ही आधार थे, और कुछ नहीं। सहसा खेल-खेल में ऋगड़ा हो गया। गाली गलीच से हाथापाई पर नौबत आ गई। मुझे बीच-बचाव कराना पड़ा। उनमें से एक ने मुझे सम्बोधित कर कहा,

“देखिये साहब ! यह खेल में बेईमानी करता है।”

“बड़ा ईमानदार का बच्चा बना फिरता है,” तत्क्षण ही उत्तर दिया दूसरे ने और सामने वाले मकान में घुस गया।

“अब, भागता कहाँ है ?” उसका पीछा करता हुआ वह अपने घर की ओर बढ़ गया। मैंने देखा वह हमारे ही घर में गया है। जानने

की उत्सुकता हुई और मेरे पग उसी ओर को बढ़ गये। शेष बच्चे पुनः खेल में लग गये। बरामदे में पहुँच कर दीवार के सहारे खिड़की में से कमरे में इस प्रकार झाँका कि कोई मुझे न देख सके। वही बच्चा एक स्त्री के पास खड़ा हुआ कह रहा था, “माँ भूख लगी है।”

“दीदी से जाकर माँग लो,” स्त्री की ओर से उत्तर मिला।

बच्चा कमरे से बाहर चला गया। मुझे स्त्री का स्वर चिर-परिचित सा लगा। कदाचित् वह स्मृति ही थी और वह बच्चा मेरा था। बाप बनने की खुशी में मेरा हृदय हर्ष से नृत्य कर उठा। इच्छा हुई कि तत्काल ही स्मृति के सन्मुख पहुँच जाऊँ और अपने व्यवहार के प्रति क्षमा याचना करता हुआ स्पष्ट शब्दों में कह दूँ, “मुझे क्षमा करो देवी ! अब तुम्हारे बिना मेरा जीवन एक सूखे वृक्ष की भाँति होगा जिसे जल की अविरल धारा भी पल्लवित नहीं कर सकेगी।” तभी उसके कानों में माँ के ये शब्द पड़े—

“बहू ! मैं मंदिर जा रही हूँ, किवाड़ ढुला लेना। आजकल उठाई गिरों का जमाना है, आँख बचते ही माल गायब। कल बैठक में से लच्छो के सारे गरम कपड़े ले गया। मरे मेठ गये ने कुछ भी नहीं छोड़ा। न जाने ऐसी ठंड में दप्तर कैसे गया होगा ?”

“अच्छा माँजी,” यह शब्द भाभी के थे। वही नौ वर्ष पूर्व की मिठास भरी ध्वनि सुनाई दी थी। माँ बाहर आ रही है। मैं उनके चरणों में गिर कर कहूँगा, “तुम्हारा जीवन लौट आया है माँ।” और वे उस बेटे को अनायास पाकर कितनी खुश होगीं, जिस के लिए वे आँसू बहा चुकी हैं। यह सोच कर मैं खिड़की से हट कर बरामदे में एक ओर खड़ा हो गया। थोड़ी ही देर बाद द्वार खुला। क्षीण प्रकाश में जीर्णकाय को गर्म शाल में लिपटे हुए बाहर निकलते देखा। पहले माँ कितनी स्वस्थ थीं ? आज वे कितनी दुर्बल हो गई हैं ? इसका उत्तरदायित्व मुझ पर ही है। न मैं घर से किनारा करता और न ही माँ की ऐसी अवस्था होती। तभी उन्होंने मेरी ओर देख कर कहा, “तुम रामी को मिलने

आये हो बेटा, वह आज देर से लौटेगा, किसी की पार्टी में जाने की कह रहा था।" मेरा उत्तर सुने ही बिना आगे की ओर बढ़ गईं मैं। अपना परिचय देना तो दूर रहा, उस पवित्रात्मा के चरणों को स्पर्श भी न कर सका। हृदय कहता था कि आगे बढ़ कर मैं से लिपट जा; किन्तु पग आगे बढ़ने का ही नाम न लेते थे। ऐसा लग रहा था मानो किसी ने उन्हें बेड़ियों से जकड़ दिया है।

"आप किन्हें पूछ रहे हैं?"

मैंने मुड़कर प्रश्नकर्ता की ओर देखा। भाभी ही थीं वे। मैं इस प्रश्न का क्या उत्तर देता जबकि घर वाले अपने आत्मीय को पहचानने में असमर्थ थे। इसलिए चुप ही खड़ा रहा। कुछ क्षण उपरांत मुझे गौर से देखते हुए कहा, "कदाचित् आप पटेल नगर से आये हैं। आप के विषय में मुझे सब कुछ बता गये हैं। मैं बैठक के किवाड़ खोले देती हूँ। आप वहाँ तशरीफ रखें। आठ बजे के करीब वे लौट आयेंगे।"

इतना कह कर वे बैठक के किवाड़ खोलने के लिए बढ़ गईं। तब भी मैं उनसे यह न कह सका कि मैं वह नहीं हूँ भाभी, जिसे आप समझ रही हैं, मैं तो आपका जीवन हूँ। किवाड़ बैठक के खुल गये पर मैं न बैठ सका। बिजली की रोशनी में देखा, सामने की दीवार पर मेरा तैल चित्र लगा हुआ है और उस पर वही हार पड़ा हुआ है, जिसे स्मृति ने मेरे गले में पहनाया था।

"कौन हैं दीदी?" स्मृति पूछ रही थी।

"भट्टे के सौदे की जिनसे बातचीत चल रही है, वही पटेल नगर से आये हैं।"

"क्या उसके बच्चे बिना काम नहीं चल सकता दीदी?"

"मुश्किल है स्मृति, घर की इज्जत का सवाल है, इसकी चिन्ता में बाबूजी ने कई दिन से ठीक तरह मुँह भी नहीं झुठलाया, अब भी किसी के पास पैसे के लिए ही गये हैं, मुझे तो काम बनता मुश्किल ही नजर आता है, लम्बी चौड़ी रकम की बात है, कौन निकालता है दूसरे के

लिए ?”

“ऐसी कितनी रकम है दीदी ?”

“पच्चास हजार के करीब होगी ।”

“बाबू जी तो कर्ज के खिलाफ हैं दीदी, फिर इतनी लम्बी रकम...।”

“रुई और मिर्च के सौदे में घाटा पड़ गया है ।”

“दीदी ! इसके लिए भट्टे को मत बेचिए । चालीस हजार का प्रबन्ध मैं कर देती हूँ, कुछ तुम कर देना ।”

“तुम कहाँ से करोगी स्मृति, चालीस हजार की रकम गुड्डे गुड़ियों का खेल नहीं ।”

“इतना तो मेरे पास जेवर है ही, दस हजार के लगभग नकद भी है । क्या बैंक चालीस हजार के माल पर तीस हजार भी नहीं देगा ?”

“देगा तो सही पर...।”

“पर क्या दीदी ?”

“बाबू जी नहीं मानेंगे ।”

“क्यों दीदी, क्या मुझे पराया समझते हैं ?”

“ऐसा मत कहो स्मृति, तुम्हें और राजीव को देख कर ही तो बाबू जी...।”

इन शब्दों को सुनकर मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, मानों मैं ही इस परिवार का नाशक हूँ, बाबूजी की व्यथा का कारण हूँ । मैंने ऐसी धिनीनी नारी के प्रति कितनी ही आत्माओं का हनन किया है और कितनों को ही धुलने के लिए विवश कर दिया है, जोकि पैसे और सौन्दर्य की भूखी थी, जिसके बनावटी प्रेम ने मुझे कहीं का न छोड़ा । काश मैं उसे अपनाने से पूर्व समझ पाता, जीवन तरणि को उसके प्रेम सागर में छोड़ने से पूर्व कुछ सोच पाता ; पर उस समय मैं अंधा था, उसके सौन्दर्य की मादकता ने मेरी आँखों पर पट्टी बाँध दी थी, अक्ल पर पत्थर डाल दिए थे, तभी तो मैं स्मृति जैसी सुशील के सौन्दर्य को जो कि दूर स्थित ज्वाला की पहुँच से बाहर लेकिन तेज तलवार के समान है, तिरस्कृत कर

ऐसे सौन्दर्य की ओर बढ़ा था जोकि तेज लपटों के समान था; पर अब वह बुझी राख बन चुका है मेरे लिए। आज से कुछ मास पूर्व मुझ में जलती हुई लपटों का उल्लंघन करने की क्षमता नहीं थी, पर अब बुझी राख को रौंद कर अवश्य चला आया हूँ। इसी विचार तंद्रा में एक घंटे से अधिक समय बीत गया। अन्दर से आवाज आनी बंद हो गई थी; किन्तु बर्तनों के खड़कने की आवाज अवश्य आने लगी थी, कदाचित् नौकर चौका उठने के बाद बर्तन साफ करने लगा था।

मैं इसी दुविधा में था कि अब क्या किया जायेगा चला जाये तो कहाँ? अपना घर होते हुए भी ऐसी समस्या मेरे सामने आ खड़ी होगी, इस विषय पर तो मैंने विचार ही नहीं किया था। क्या चेहरे के विकृत हो जाने से आत्मीयता खत्म हो जाती है? क्या माँ का हृदय भी नहीं पहचान पाता दिल के टुकड़े को? क्या वह इंसान भी उसको भूल जाता है, जो साये की तरह साथ रहा हो, अगर यही विधाता की विडम्बना है तो इसमें उस कोमलांगी का क्या दोष, जो सौन्दर्य के लुप्त होते ही किनारा कर जाती है। यह विचार आते ही मेरा हृदय स्नेह की ओर से साफ हो गया और मस्तिष्क कुछ-कुछ हल्का सा प्रतीत होने लगा।

“तुम अभी तक खड़े हो बेटा, रामी नहीं लौटा क्या?” माँ ने मेरे सम्मुख खड़े होकर प्रश्न किया। इस समय वह मंदिर से लौट कर आ रही थीं।

सहसा मेरे मुख से निकल गया, “जीवन....।”

इतना सुनते ही माँ की आँखें भर आईं, उन्होंने खँचे हुए कंठ से सूझा, “कहाँ से आ रहे हो बेटा, जीवन को तो हमारे से बिछड़े एक प्ररसा बीत गया। घाट पर से कपड़े ही मिले थे उसके। कहते थे नहाते हुए गंगामेया की शरण में चला गया। सब ने रो धो कर सन्न कर लिया बेटा, अब तो उसकी एक ही निशानी है राजीव; पर बेटा, मेरा दिल यही कहता है कि जीवन इस दुनिया में है; लेकिन बाबू जी और रामी इस बात पर यकीन ही नहीं करते, कहते हैं यह सब तुम्हारा वहम है,

उसके साथियों ने उसे डूबते हुए देखा है”, आसुओं को पोंछते हुए उन्होंने कहा “अन्दर चलो बेटा, तुम्हारा दोस्त नहीं तो उसकी माँ तो जीवित है, मुँह झुठलाये बिना नहीं जा पाओगे।”

“माँ तुम्हारा जीवन.....” मैंने धीमे स्वर में कहा ।

“हाँ, बेटा क्या कहना चाहते हो, क्या मेरे दिल की बात सच है, मजे में तो है वह, क्या तुम उसका संदेश लेकर आये हो ?” माँ ने मुझे झकोरते हुए एक दम इतने प्रश्न कर डाले ।

मैंने माँ की आँखों में अनोखी उत्सुकता देखी और उसके चरणों को स्पर्श कर कहा, “तुम्हारा जीवन लौट आया है माँ, उसके अपराधों को क्षमा कर दो।”

“मेरा बेटा”, कहकर उन्होंने मुझे उठा गले से लगा लिया और वहीं से चिल्लाकर कहने लगीं, “अरी बहू, देख तो सही, जीवन आया है।”

“जीवन भैया,” कहती हुई भाभी तत्क्षण दौड़ी हुई आई और आस पास की खिड़कियों में से कई सिर झाँकते हुए दिखाई दिए । मुझे बैठक में बैठे मुश्किल से आधा घंटा बीता होगा कि बाबू जी और भैया भी आगये । उस समय मैं पड़ोसियों से घिरा बैठा उनकी शंकाओं का समाधान कर रहा था, जो कि मेरे विकृत चेहरे ने उनके मन में उत्पन्न कर दी थीं ।

बाबू जी और भैया को देखकर मेरी प्रबल इच्छा हुई थी कि उनके चरणों में गिर कर अपने अपराधों की याचना करूँ; किन्तु वह पूरी न हो सकी ; क्योंकि वे बैठक में न ठहर कर अन्दर चले गये थे । उन दोनों की मेरे प्रति उदासीनता माँ को खल उठी । वह उनके पीछे ही अन्दर चली गई । धीरे-धीरे मेरे पास से भीड़ छूटने लगी और न बजते-बजते मैं बैठक में अकेला रह गया । एकान्त में मेरी आँखों ने स्मृति को ढूँढने का प्रयत्न किया, राजीव को प्यार करने की लालसा तीव्र हो उठी, हृदय को सान्त्वना देते हुए मन ने कहा, “अधिक व्याकुल क्यों होता है,

स्मृति और राजीव दोनों ही तेरे पास आते होंगे ?” सहसा किसी के कदमों की आहट सुनाई दी, हृदय तेजी से धड़कने लगा, मन ने स्मृति के प्रश्नों के उत्तर सोच लिए, बैठक में आने पर पता चला कि वह आहट स्मृति की नहीं, भाभी की थी, जोकि थाली लेकर मुझे खिलाने आई थीं।

उसने थाली मेरे सम्मुख रखते हुए कहा, “खाना खाओ जीवन भैया।”

भूख न होते हुए भी उनके आग्रह को न टाल सका। हाथ धोकर खाने के लिए बैठ गया। आस को तोड़ते हुए मैंने भाभी से पूछा, “तुम मेरे साथ नहीं खाओगी क्या ?”

वह असमंजस में पड़ गई। बचपन की ज़िद एक अवधि के बाद फिर साकार हो उठी। उसने भिन्नकते हुए उत्तर दिया, “फिर कभी खालूंगी भैया, आज...” इसके बाद दो बड़ी-बड़ी बूंदे फर्श पर टपक पड़ी। वाक्य अधूरा ही रह गया। किस व्यथाग्नि में भाभी इस समय भुलसी गई ? क्या अतीत की स्मृति उनके लिए तुषार बन बैठी ? या किसी कारण से ? मैं उस समय किसी निर्णय पर न पहुँच सका और आस उँगलियों में फँसा रह गया, वे उसे मुँह तक न पहुँचा सकीं। भाभी ने भीगी पलकों को आँचल का सहारा दिया और बोलीं, “सब्जी ठंडी हो रही है भैया, खाना खाओ।”

यह आग्रह इस समय स्नेह और सहानुभूति का आगार बन गया था। फिर मुझ जैसा ठुकराया प्राणी उससे दूर कैसे जा सकता था ? उँगलियों में फँसा आस मुँह तक पहुँच गया। अभी मुश्किल से दो तीन आस सटके होंगे कि बाबूजी की कर्कश ध्वनि मेरे कानों में पड़ी, वे माँ से मेरे विषय में ही कह रहे थे, “रामी की माँ ! जिसे तुम जीवन समझ बैठी हो, वह हमारा जीवन नहीं, वह तो कभी का हमारे से किनारा कर बैठा है, मैं किसी।” इसके आगे के शब्द मुझे सुनाई न दे सके। ध्वनि की कर्कशता शिथिलता में परिणित हो गई थी। तथापि मैं उनके आशय से पूर्णतया अवगत हो गया था कि वे मेरा यहाँ रहना पसन्द नहीं करते।

मैं तत्काल ही थाली को वैसे ही छोड़ उठ खड़ा हुआ, बोला, “भाभी ! अब यह नराधम तुम लोगों की आत्मा को दुखाने के लिए कभी नहीं आयेगा, कष्ट के लिए क्षमा ।” इतना कहकर मैं द्वार की ओर बढ़ा और भाभी चीख उठी, “माँ जी ! जीवन जा रहा है ।”

“रोको बहू, मैं आ रही हूँ,” “इन शब्दों के साथ ही किसी के गिरने की आवाज़ मेरे कानों में पड़ी । मैंने मुड़ कर देखा । माँ का माथा चौखट पर लगा था और उससे खून बह रहा था । भाभी उठाने का प्रयत्न कर रही थी और बाबूजी दूर आँगन में खड़े किन्हीं विचारों में खोये हुए थे । हाँ, स्मृति अवश्य आवाज़ को सुनकर चली आई थी । कुछ क्षण जड़वत सा खड़ा होकर, मैंने माँ की अपनी गोदी में उठा लिया था । वह इस समय मूर्च्छित थी । मैंने भाभी के सँकेतानुसार उन्हें पलंग पर लिटा दिया । भैया फौरन ही डाक्टर को बुलाने के लिए चले गये । स्मृति उनके पायताने बैठी हुई थी, भाभी और मैं सिरहाने । बाबूजी अब तक वहीं खड़े हुए थे । माँ को देखने के लिए अन्दर नहीं आये थे । मेरे कुरते और कोट पर माँ के खून के दाग लग गये थे । कुछ देर बाद माँ को थोड़ा-थोड़ा होश आया । वे उसी अर्ध-चेतनावस्था में धीमे स्वर में पुकारने लगीं, “जीवन...जीवन तू मुझे छोड़कर मत जा बेटा, तेरे बिना मैं जिन्दा नहीं रह सकती...” और फिर दौरा सा पड़ा, वे शांत हो गईं । डाक्टर साहब भी भैया के साथ पहुँच गये थे । उन्होंने माँ का घाव धोकर पट्टी बाँध दी । थोड़ी देर बाद माँ को होश आया, वही प्रलाप था उनकी जिह्वा पर, “जीवन...मत जा बेटा, तू कहाँ है, मेरे सीने से लग जा ।”

“माँ ! मैं तुम्हारे पास ही हूँ,” मेरे मुख से निकला; लेकिन मैं यह नहीं कह सका कि तुम्हें छोड़कर कहीं नहीं जाऊँगा माँ, इसका कारण था मेरा जाग्रत स्वाभिमान ।

डाक्टर ने नींद लाने के लिए माँ को गोली दी और मेरी ओर विशेष दृष्टि से देखकर भैया से उन्होंने कुछ कहा । मैं उस कथन को न

सुन सका। इसके बाद डाक्टर अपनी फीस लेकर चला गया और भैया उसे कार तक छोड़ने के लिए गये। उनके पीछे ही भाभी भी किसी कार्यवश उठ कर चली गई। अब स्मृति मेरे सम्मुख थी। इच्छा हुई कि इस देवी से अपने व्यवहार के प्रति क्षमा याचना करूँ; पर अवसर पाकर जिह्वा से एक शब्द भी नहीं निकला, मानो किसी ने उसमें ताला डाल दिया हो। हाँ, आँखें बेशक उसके लावण्य को निहार कर संतुष्टि का अनुभव करती रहीं। उसके पैरों की उंगलियों में चुटकी और माँग में सिन्दूर देखकर मुझे ऐसा लगा कि स्मृति ने मुझे पहचानने में भूल नहीं की है और सुहाग का सिंगार मेरे लिए किया है।

उसी क्षण बाबूजी ने कमरे में प्रवेश किया और स्मृति को सम्बोधित कर बोले, “बेटी ! राजीव अकेला है कमरे में।”

स्मृति ने सजल नेत्रों से मेरी ओर क्षणिक देखा और फिर उठकर उस ओर चली गई, जिस ओर राजीव सो रहा था। मैं भी चलने के लिए उठा, द्वार तक मुश्किल से ही जा पाया था कि बाबूजी का स्वर सुनाई पड़ा, “माँ की जिन्दगी से खेलना चाहते हो जीवन, रुक जाओ, उसके अवशेष जीवन में तुषार मत बनो बेटा... और राजीव को भी तुम्हारे प्यार की जरूरत है, लौट आओ जीवन, मेरे लिए नहीं तो और...”

मैंने मुड़कर देखा कठोर हृदय अब पसीज गया था और गला भारी जाने के कारण जिह्वा वाक्य को पूरा न कर सकी थी।

“बाबूजी,” मेरे मुख से निकला और मैं उनसे लिपट गया। दोनों के अश्रु भिन्न-भिन्न दिशा से निकल कर धरा पर एक हो गये।

मैंने सारी रात भावी जीवन के चित्र अंकित करने में काटी ; पर भावनाओं की तूलिका इच्छानुसार रंग न दे सकी । पहले रंग भर कर तनिक दूर से निहारता तो मुझे विदित होता कि धूप के स्थान पर छाँह है और छाँह के स्थान पर धूप । सारे चित्र में लाली ही अधिक दृष्टिगत होती है, उपवन में अस्वाभाविक रमणीयता है, पर्वतों पर आवश्यकता से अधिक हरियाली है और सरिताओं में अलौकिक शांति । फिर तूलिका को सम्भाल कर जीवन के चित्र में से इन त्रुटियों को सुधारने का प्रयत्न करता तो सारा दृश्य आवश्यकता से अधिक नीरस, उदास और मलिन हो जाता ।

सवेरा होते ही मैं माँ के पास गया । स्मृति उन्हें अपने सहारे बैठा कर दूध पिला रही थी । मुझे देखकर उन्होंने दूध पीना छोड़ दिया, बोली, “बस रहने दे बेटी और ज्यादा हलक़ में नहीं उतरता ।”

“दो ही घूंट रह गया है माँजी, इससे बचोगी तो जी कैसे सम्भलेगा,” धीमे स्वर में ऐसा कहते हुए स्मृति ने दूध के पात्र को माँ के होठों से लगा दिया । माँ ने एक ही सांस में पात्र को खाली कर हल्की सी मुसकान ओष्ठों पर लाकर कहा, “बस अब तो खुश है तू ।”

स्मृति ने उत्तर नहीं दिया । वह माँ को सावधानी के साथ लिटा

कर चली गई। उसके जाने पर मैंने माँ से पूछा, “अब कैसी तबीयत है माँ?”

“ठीक हूँ बेटा, तनिक कमजोरी है। पर तू रहा कहाँ इतने दिन, यह बदसूरत चेहरा...?”

कहते-कहते गला भर आया।

“मन भारी मत करो माँ, भगवान ने मुझे दंड दे दिया है तुम्हें सताने का, तुम्हारी आत्मा को दुःखाने का, चेहरा ही विकृत नहीं हुआ, एक हाथ और एक पैर भी जाता रहा है। तुम्हारे दर्शन बाकी थे इस जीवन में माँ, तभी तो बच पाया हूँ।”

“मेरे लाल तेरी ज़िन्दगी...।” इतना कहकर फफक उठी माँ।

उसके रोने की आवाज़ सुनकर भाभी और भैया दौड़े हुए आये, बोले, “क्या हुआ है माँ, दर्द ज्यादा है क्या, अभी डाक्टर को बुलाता हूँ?”

माँ ने भैया का हाथ पकड़ कर रोकते हुए कहा, “देख तो ज़रा रामी ! निष्ठुर ने मेरे जीवन का जीवन ही खोखला कर दिया। हाय ! बेचारे ने कितने कष्ट भोगे हैं ? कोई अंग भी तो ठीक नहीं छोड़ा ?”

रमेन्द्र ने देखा, जीवन का बाँया हाथ और पैर लकड़ी का बना हुआ है; लेकिन कुशल कारीगर ने उन दोनों चीजों को इतने अच्छे ढंग से बनाया है कि जीवन उन्हें बनावटी अंग नहीं समझ पा रहा है। वह बखूबी चल फिर सकता है। इच्छानुसार अवस्था में बैठ उठ सकता है। इसी कारण से तो वह अपंग होते हुए भी अपंग दृष्टिगत नहीं हुआ था उन्हें। उनके मुख से निकल गया, “यह सब कैसे हुआ जीवन, इतना दुःख भेला, सूचना भी न दे सके मुझे ?”

मैं उन्हें कैसे बताता कि उस समय तक स्नेह ही मेरी सब कुछ थी। उसकी चितवन के समक्ष मैं सभी आत्मीयों को भुला बैठा था। फिर खबर कैसे दे सकता था ? आज वही चितवन किसी और की हो गई थी ? मेरी पुजारिन की उपासना मुझ तक सीमित न रह कर और...

ओह ! मैं यह सब कुछ क्यों बतलाना चाहता हूँ ? साफ ही क्यों नहीं कह देता कि विश्वास मेरे स्नेह को चुरा कर ले गया । मैं ठगा सा देखता रह गया और फिर पराजित योद्धा के समान पीठ दिखाकर वहाँ चला आया, जहाँ से सदा के लिए मुँह मोड़ा था । भाई साहब के प्रश्नों को सुन कर इतना ही कह सका. "भाग्य में जो लिखा था उसे भोगना ही पड़ा भैया, फिर आपको सूचित कर कष्ट पहुँचाने से क्या फायदा था, कदाचित्त मैं मेरे कटते हुए अंग को न देख सकती ?"

"ठीक कहते हो जीवन, मां का हृदय बड़ा कोमल है, कदाचित्त उसका हार्टफेल ही हो जाता । अच्छा तुम कलेवर के लिए तैयार हो जाओ, मैं डाक्टर को टेलीफोन किए देता हूँ ।"

लगभग बीस मिनट के बाद हम लोग डार्निंगरूम में कलेवर के लिए उपस्थित हुए । भाभी माँ को अपने सहारे से वहाँ तक ले आई थी । कलेवर करते समय मां आज प्रसन्न दिखाई देती थी; क्योंकि एक लम्बी अवधि के उपरांत उसका चिर स्नेही बेटा उसके साथ बैठकर नाश्ता कर रहा था । राजीव अपने भगड़े के बीच बचाव करने वाले साहब को अपने समक्ष देखकर कौतूहलता दिखा रहा था और संकेत से अपनी माँ से परिचय के लिए इसरार कर रहा था । उसी के पास बैठा हुआ दीपक हलुवे की प्लेट साफ करता हुआ मुझे देख रहा था । स्मृति बेचारी गर्दन झुकाये चाय का घूंट भर रही थी, अतः राजीव के संकेत को देख कर भी, वह मेरा परिचय देने में किसी झिझक का अनुभव कर रही है, यह मुझसे और भाभी से छिपा न रह सका । मैं बाल सुलभ जिज्ञासा पर मन ही मन मुसकराया और भाभी ने राजीव को सम्बोधित कर पूछा, "इन्हें जानते हो राजीव ।"

"हाँ, ताईजी कल सत्तो से इन्होंने छुड़ाया था, "राजीव ने चम्मच के हलुवे को मुँह में रख उसे सटक कर सरलता के साथ कहा, "ये न आते तो खेल में बेईमानी करने का मजा चखा देता बच्चू को, नाम तो बाप दादा ने रक्खा है सत्य प्रकाश और काम हैं उसके.....।"

बाबूजी ने हँसते हुए वाक्य पूरा किया, “भूठे प्रकाश के, यही कहना चाहते थे न राजीव।”

समर्थन में उसका केवल सिर हिल गया, उसकी वाक् चातुर्य से मेरा रोम-रोम पुलकित हो उठा। अभी से उसके हृदय के भाव कितने सुन्दर हैं? उन पर उसके माता के सद्गुणों की छाप पड़ चुकी है, पर...पर क्या, राजीव में मेरा रक्त है, क्या मेरा दोष उसके भावी जीवन में, हृदय के इन विचारों को, मन ने यह कह कर सन्तुष्ट कर दिया कि गुणों के सागर में अकेला दोष चन्द्र ज्योत्सना में कलंक की भाँति छिप जाता है।

तभी अभी ने राजीव की ओर देख कर कहा, “बस केवल इतना ही।”

अपने अल्प ज्ञान पर राजीव कुछ लजा सा गया।

“ये तुम्हारे पिताजी हैं,” अभी पुनः कह उठीं।

हर्ष से राजीव की आँखें चमक उठीं, चम्मच हाथ से छूट गया और धीमे स्वर में उसके मुख से निकला, “पिताजी।”

उसी क्षण घंटी की तीव्र ध्वनि गूँज उठी। बाबूजी ने स्मृति की ओर देखकर कहा, “देखना बेटी, कदाचित् डाक्टर साहब आये हों।”

स्मृति बहुत देर से एक प्रकार की घुटन सी अनुभव कर रही थी, वहाँ से उठना भी चाहती थी, पर अवसर नहीं मिल रहा था, बाबूजी के कहते ही वह शीघ्रता से द्वार की ओर बढ़ गई। उलटे पैरों ही उसने माँजी के पास आकर कहा, “चलिए माँजी, डाक्टर साहब पट्टी करने के लिये आ गये हैं।”

माँ को अनिच्छा से उठना पड़ा और स्मृति अपने सहारे से उन्हें उनकी शैया की ओर ले गई।

कलेवर के उपरांत राजीव और दीपक स्कूल की तैयारी में लग गये और अभी दोनों बच्चों को तैयार करने में। हम लोभ वहाँ से उठकर डाइंगरूम में आ गये। डाक्टर साहब ने लौटते समय बताया कि घाब

भरने में कई रोज़ लग जायेंगे, उनकी कमजोरी के लिए मैं कुछ टेबलेट लिख चला हूँ, उन्हें अवश्य प्रयोग में लाने का प्रयत्न करना मि० रमेन्द्र ।”

“बहुत अच्छा डाक्टर”, कह कर रमेन्द्र ने उनकी फीस हाथ में थमा दी ।

डाक्टर के चले जाने के बाद रमेन्द्र ने बाबूजी की ओर देख कर कहा, “वे लोग तो आये नहीं, मैं भी ऑफिस की तैयारी करूँ ।”

बाबूजी ने जिज्ञासा पूर्ण दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए पूछा, क्या आज की छुट्टी नहीं ले सकते रामी, इस काम को निबटा कर ही……?”

“जैसा आप कहें, मगर उन लोगों का निश्चय भी तो नहीं ।”

“क्यों न हम ही चलें उनके पास ? गरज बावली होती है बेटा ।”

“चलने में तो कोई हर्ज नहीं समझता बाबूजी किन्तु , …?”

“किन्तु क्या ?”

वे लोग जबान के पक्के नज़र नहीं आते, अब तक की बातों से मैं यही अनुभव कर चुका हूँ ।

इतना सुनकर बाबूजी कुछ चिन्तित से हो उठे, उनके मुख से निकल गया, “फिर क्या होगा ?”

मुझे से बाबूजी का दुःख नहीं देखा गया, कारण रात ही समझ गया था, सो निडरता के साथ कह बैठा, “रुपये का प्रबन्ध हो जायेगा बाबूजी ।”

“छोटी-मोटी रकम नहीं है जीवन”, भैया ने शंकित स्वर में कहा ।

“जानता हूँ भैया ।”

“कैसे प्रबन्ध हो सकेगा जीवन ?” बाबूजी ने उत्सुकता से पूछा ।

“भग्नी विलोचन प्रसाद के पास जाता हूँ बाबू जी, भगवान ने चाहा तो ड्राफ्ट ले कर ही लौटूंगा ।”

“कहाँ लोगे क्या ?”

“ऐसा ही समझ लो ।”

“तब मैं उसके लिए तैयार नहीं जीवन ।”

“इस में हर्ज क्या है बाबू जी, पाँच साल में सब अदा हो जायेगा ?”

“सब कुछ ठीक है; किन्तु मैं नहीं चाहता कि ठाकुर के बेटे कर्जदार कहलायें। दूसरे कर्जदार की आत्मा भी तो मर जाती है ।”

बाबू जी की हठधर्मी मुझ से छिपी नहीं थी, हठात् चुप रहने में ही कुशल समझी । परिणामस्वरूप उस क्षति को पूर्ण करने में मकान के सिवा सब कुछ भेंट चढ़ा दिया गया । कौड़ियाँ के दाम जाने पर भी बाबू जी को दुःख नहीं था; बल्कि उस संध्या को उनके चेहरे पर खुशी थी इस बात की, उनके सिर पर किसी का एक पाई का कर्ज नहीं रहा है ?

माँ ने अवश्य चिंतित स्वर में पूछा था, “सारी गृहस्थी का बोझ रामी अकेला कैसे सम्भाल सकेगा, पहले तो भट्टे और बागों की आम-दनी से सहारा लण जाता था ।”

यह वास्तविकता थी, इसने बाबू जी को सोचने पर विवश कर दिया, कुछ देर के बाद बोले, “रामी की माँ ! नीचे के छः कमरों में हम लोग गुजारा कर लें और ऊपर का सारा...”

वाक्य पूरा न कर सके वे । माँ ने आश्चर्य प्रकट करते हुए पूछा, “किराये पर उठवाओगे क्या ?”

“इसमें हानि ही क्या है, घर बैठे चार सौ की आमदनी बढ़ जायेगी ।”

“आखिर उतर ही आये इस बात पर, किरायेदार का रखना, इज्जत चौक पर रखना है बड़े ठाकुर, इस बात को सोच समझ कर कदम उठाना ।”

“छी ! छी ! कैसी बातें करती हो रामी की माँ ? अगर सभी मालिक मकान ऐसा सोच लें तो गरीबों या मध्यम वर्ग के लोगों का तो शहर में कोई ठिकाना ही न रहे ? मास्टर चुन्नीलाल को तो जानती ही हो, वह तो किराये के लालच में मकान पर मकान बनवाये जा रहा है,

फिर हम ही क्यों न लाभ उठायें ?”

इसके बाद दोनों में विशेष बातचीत नहीं हुई। बाबू जी संध्या का भोजन कर घूमने के लिए चले गये और मैं ड्राइंग रूम में बच्चों के पास बैठ गया। वे बैठे स्कूल का काम कर रहे थे।

उनकी तन्मयता को देख कर मेरे मुख से निकल गया, “बड़ी लगन से काम कर रहे हो बच्चो।”

दीपक तो मेरी ओर देख कर ही रह गया; किन्तु राजीव उत्तर देने में नहीं चूका, बोला, “पिता जी ! मास्टर साहब ने बताया है कि लगन से काम करने में सब कुछ है और लगन के बिना कुछ भी नहीं।”

बस वर्षीय राजीव के मुख से ‘डिकिन्स’ के इन शब्दों को सुन कर मैं दंग रह गया और उसकी पीठ थपथपाते हुए पूछ बैठा, “कौन सी कक्षा में पढ़ते हो तुम ?”

“छठी में”, संक्षिप्त सा उत्तर मिला।

मैंने प्रश्न किया, “हमें समय को बेकार खोना चाहिये क्या ?”

तत्क्षण ही उसने आगे का काम छोड़ कर उत्तर दिया, “नहीं पिताजी ! समय को बेकार नहीं खोना चाहिये, समय अमूल्य है, बीता हुआ समय वापस नहीं आता है।”

उसकी बुद्धि की नाप तोल करने के लिए मेरी जिज्ञासा बढ़ती गई और मैंने कई प्रश्न कर डाले।

“सत्य का पालन क्यों करना चाहिए ?”

“उसके बराबर कोई दूसरा तप नहीं,” उत्तर मिला।

“संग किसका अच्छा है ?”

“अपने से बुद्धिमान का।”

“दूसरों के दुर्गुणों को देखना चाहिए।”

“नहीं, अपने दुर्गुणों को देखना चाहिए।”

“दूसरों की उन्नति देख कर जलना चाहिए।”

“नहीं, बल्कि उनकी उन्नति को अपनी उन्नति ही समझनी चाहिए।”

“किससे डरना चाहिए ?”
 “ईश्वर से ।”

उसी क्षण भाभी ने दूध का गिलास मेरे हाथ में थमाते हुए पूछा, “क्या राजीव की परीक्षा ली जा रही थी ? इसकी बातों से पता चलता है कि पूर्व जन्म में यह कोई सिद्ध ज्ञानी था या महात्मा । जिन के विषय में हम भी कुछ नहीं जानते, उन्हें इसकी जिह्वा से सुन लो । बड़ा होनहार है । स्मृति दीदी के तो ऐसे पुत्र को पाकर भाग्य खुल गये,” फिर राजीव की ओर देख कर बोली, “राजू बेटा ! इन्हें बुद्ध वाराणी नहीं सुनाई ।”

“अभी सुनाता हूँ ताई जी,” कह कर राजीव ने सुनाया, “प्रेम से क्रोध को, शुभ से अशुभ को, निःस्वार्थ से स्वार्थ को और सत्य से असत्य को जीतो । जो तुम्हारी बुराई करे उस पर क्रोध न कर के उसके साथ प्रेम करो । तुम्हारी जो जितनी बुराई करे उसकी तुम उतनी ही भलाई करो ।”

“सुना जीवन भैया, जो एक बार पढ़ लेता है उसे नहीं भूल पाता । बुद्ध जयन्ती समारोह इनके स्कूल में क्या मनाया गया, तब से यह महात्मा बुद्ध का पक्का शिष्य बन गया । एक दिन घर में कानखजूरा निकल प्राया । मैं उसे चिमटे से पकड़ कर मारने लगी तो भट से उसे छुड़ाता हुआ, बोला, “जीव-हत्या पाप है ताई जी ।”

मुझे राजीव की विलक्षण बुद्धि पर आश्चर्य ही नहीं हर्ष हुआ और मैं दूध पीने लगा । भाभी ने घड़ी की सुइयों की ओर देख कर कहा, “नौ बज गये हैं, काम बन्द कर दूध पीकर सो जाओ । आदेश का पालन हुआ । दोनों बच्चे पुस्तकें समेट कर चले गये । उनके जाने पर मैंने झुकते हुए पूछा, “भाभी ! क्या स्मृति मुझ से अब भी नाराज है ?”

“क्या उसने कुछ कह दिया तुम्हारे से ?”

“ना कहना ही तो उसकी नाराजगी को प्रकट करता है भाभी ।”

भाभी ने कुछ क्षण रुक कर उत्तर दिया, “तुमने भी तो उसे बरसों

“...।” वाक्य को पूरा किए बिना ही खाली गिलास लेकर चली गई अभी और मैं माँ के कमरे में भाँकता हुआ, अपने बिस्तर पर जा लेटा, नींद नहीं आई, मन उलझ गया सोचने और विचारने में, मुझे लगा कि यह जीवन भी मरुस्थल के समान ही निर्जन, निःसंग है। भूले भटके, अनजाने पथिक के समान, बीच-बीच में न जाने कहाँ से चंचलता आ जाती है ? खुशी के खुले भरने की धारा में गगन और पवन गीत गाते हैं, नृत्य करते हैं। इसके बाद रात्रि का आगमन होता है और निर्जन एवं निस्तब्ध रात्रि की छाती पर दूर तक पग बढ़ाने से मार्ग की व्यथा का अनुभव उसी प्रकार किया जा सकता है जिस प्रकार तृषित प्राणी किसी सरिता के छोर पर पहुँच कर उसे शुष्क पाता है ?

उफ़ ! न जाने कब तक निद्राहीन आँखें ताकती रहेंगी उस तैल चित्र को ? अष्टमी का दुबला-पतला फीका चन्द्रमा अर्धरात्रि को बिता कर वातायन में से मुझे देख रहा है, उसकी हल्की-हल्की ज्योत्सना मेरी चोरी को पकड़ने के लिए काफी है, तब भी मैं कातर न होकर उस लावण्य को घूर रहा हूँ जिसे मैं मिट्टी समझ बैठा था। यह क्या ? चेहरा बदलता हुआ क्यों दृष्टिगत हो रहा है ? स्नेह ! अब क्यों आई है इसके रूप में ? क्या वह पुरानी याद ताजा कराना चाहती है, पुरानी बातों को अकेले में दोहराना चाहती है ? क्या वास्तव में वह बहुत पुरानी बातें हैं ? नहीं, बारह वर्ष पहले अभी उसी दिन की तो बात है वाक्प्रयोगिता वाले कमरे में कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तल और विष्णु पुराण की उपमा देते हुए मैंने भारतीय नारी के विषय में कहा था, “भारतीय नारी का आत्म संयम प्रशंसनीय है। वह स्वेच्छाचारिणी नहीं होती। उसका प्रेम अंधा नहीं होता, किसी पर अनुरक्त होकर भी वह सामाजिक रीति नीति का उल्लंघन नहीं करती। वह घर में रमणी बनकर नहीं कुल वधू बनकर, सारे कुल के पालन-पोषण का कठोर व्रत लेकर आती है और स्वयं कष्ट उठाकर भी घर के सब प्राणियों के सुख दुःख का ध्यान रखती है। उसके प्रत्येक कार्य में स्वार्थ विसर्जन की

भावना रहती है।" इसके बाद मैंने देखा कि दो आँखें विशेष रूप से टकटकी लगाये मुझे देख रही हैं। मुझे कुछ लज्जा का सा अनुभव हुआ। बचपन से ही शर्मीला था यहाँ तक कि लड़कियों से बचता फिरता था। यह मेरी आदत बन चुकी थी। यह जानते हुए कि आदत चाहे कैसी ही क्यों न हो अच्छी नहीं होती, कभी तो अच्छी सेविका का रूप धारण कर लेती है और कभी सबसे बुरी मालकिन का, छोड़ने की कोशिश नहीं की ?

कमरे से जैसे ही बाहर निकला तो पीछे से किसी का मधुर कंठ सुनाई दिया। अगला कदम उठते-उठते रह गया। पीछे मुड़कर देखा, वही मृगनयनी मुझे सम्बोधित कर कह रही थी, "सुनिये मि० जीवन।"

"कहिये," अनायास ही मेरे मुख से निकल गया। इंजीनियरिंग की कक्षा का दूसरा वर्ष चल रहा था। इससे पूर्व मैंने कालेज की किसी छात्रा से बातचीत नहीं की थी ? उनका हास परिहास अवश्य कानों में पड़ जाता था। वे किस को अपना शिकार बनाती थीं ? किस को बेसिर पेंर की उपाधियों से सुशोभित किया जाता था ? मैंने इन चीजों को जानने की परवाह नहीं की थी। मगर आज मेरे सामने विवशता थी और मैं उस बला को टालने के लिए मन ही मन में भगवती को स्मरण कर रहा था।

वह मेरे पास आकर बोली, "मैं आपकी वाक् प्रतिभा पर मोहित होकर खिची चली आई हूँ। भारतीय नारी के प्रति आपके कितने उच्च विचार हैं, वह आज की वक्तृता से मुझे पता चल गया है ? क्या आप इस विषय पर मेरे साथ विचार विनिमय करने के लिए कुछ समय निकाल सकेंगे ?"

"नारी जाति के प्रति मैं किसी नारी के विचारों से अवगत होना चाहता था, इसलिए सहर्ष स्वीकृति देते हुए पूछा, "कहाँ चलना होगा ?" ये शब्द मुख से निकलते ही मुझे अनुपयुक्त से लगे, उस मुन्दरी को कैसे लगे होंगे, मैं नहीं जान सका इस बात को।

“ग्राइये,” कह कर वह पुस्तकालय की ओर चल दी और मैं भी किसी किसान की गऊ के समान उसके पीछे-पीछे चल दिया।

पुस्तकालय में पहुँच कर हम दोनों एक ओर एकांत में बैठ गये। यहाँ पर बैठे हुए छात्र एवं छात्राओं ने छुपी दृष्टि से हमें देखा, काना फूसी चली, विशेष हँसी सुनाई दी। किन्तु उसने किसी की परवाह न करते हुए कहा, “मि० जीवन ! मैं समझती हूँ कि नारी की कलूणा अंतर्जगत का उच्चतम विकास है, जिसके बल पर समस्त सदाचार ठहरे हुए हैं।”

“ठीक कहती हो मिस ...” मुझे अपनी नव परिचिता का नाम ज्ञात नहीं था सो कुछ कहता कहता रुक गया।

वह मेरी भिन्नता को समझ गई, बोली, “मुझे स्नेह पांडे कहते हैं और यहाँ की प्रथम वर्ष कौ छात्रा हूँ।” कितनी सरलता से उसने अपना परिचय दे दिया, यह उसकी स्पष्टता का द्योतक थी ?

“क्रूरता को अपनाते ही समस्त सदाचारों में विप्लव हो उठेगा मिस पांडे।”

“दया, कलूणा, क्षमा और उदारता रूपी आभूषणों को जीवन में धारण करने वाली नारी क्रूरता को कभी अपना सकेगी, इसमें मुझे सन्देह है मि० जीवन।”

“कभी कभी समय और परिस्थितियाँ सन्देह को भी पुष्ट कर देती हैं।”

“सम्भवतः ऐसा ही हो; किन्तु हमारे ग्रन्थ कहीं ऐसा नहीं बतलाते, हर स्थिति में लोक और कुल की मर्यादा का सम्मान करना ही तो नारी की विशेषता है। मन के हाथ से निकल जाने पर भी वह कभी किसी अनुचित कार्य में प्रवृत्त होने की भूल नहीं करती।”

“मिस पांडे, यह कथन सतयुग की नारी पर तो चरितार्थ हो सकता है जोकि पतिव्रत धर्म में ही ईश्वर का सम्पूर्ण वैभव देखती थी, जो कैंची के दो भागों के समान ही पति के साथ पारस्परिक जीवन को पूरा

करती थी, जिस की उन्नति या अवन्नति पर राष्ट्र की उन्नति व अवन्नति निर्भर होती थी, उसके समान अन्य कोई मनोहर वस्तु संसार में नहीं समझी जाती थी, जिसकी उपमा ऐसे पुष्प से दी जाती थी जो घर में ही अपनी सुगन्ध फैलाता है, जिनका मोह शरीर छूने के पहले विवेक को ही लेता है और उसकी कीमत होती थी दुःख और बलिदान ।”

“आज की नारी पर क्यों नहीं मि० जीवन ?”

मैंने उसके चेहरे की ओर देखा, उसका रंग कुछ उड़ चला था, हृदय ने समझाया कि तुम्हें क्षणिक मिलन में ही इतना तीखा प्रहार नहीं करना चाहिये था, आखिर वह भी तो नारी है इस आधुनिक युग की, कहीं इसे उसने अपने चरित्र पर ही चुनौती समझ ली तो और मुख से निकला, “छोड़िए मिस पांडे इस टॉपिक को ।”

“उत्तर मिल जाता तो....”

“अरुचि उत्पन्न करने से कोई लाभ नहीं, हरेक मनुष्य का अपना-प्रपना दृष्टिकोण होता है, जो चीज मुझे अच्छी नहीं लगती वह दूसरों के लिए रुचिकर हो सकती है, ऐसी अवस्था में....”

कहते-कहते क्यों रुक गये आप, स्पष्टता स्नेह की वस्तु है मेरे लिए तिरस्कार की नहीं, फिर भटकी हुई नारी का मार्ग प्रदर्शन करना भी तो पुरुष का ही काम है ।”

“यह आप क्या कह रही हैं मिस पांडे, यह भटकना ही तो आज की नारी का सौन्दर्य बन चुका है, पाश्चात्य सभ्यता ने उसे ‘हाट का पुष्प’ बना दिया, जिसकी सुगन्धि सर्वत्र फैल चुकी है । वह नहीं समझती कि उसकी सृष्टि प्रत्येक को सुख करने के लिए नहीं अपितु एक-मात्र अपने गति को सुख देने के लिए हुई है ?”

“आप का संकेत सौन्दर्य प्रसाधनों से लिप्त उन तितलियों की ओर है जो हवा खोरी के बहाने दूसरों के सम्मुख अपने आडम्बर युक्त सौन्दर्य का नमूना पेश करती हैं ।”

“जी हाँ कम से कम मैं तो इन्हें हीन दृष्टि से देखता हूँ मिस पंडे, मेरे विचारों में वही अधिक सुगन्ध वाली स्त्री है, जिसकी गंध किसी को नहीं मिलती ? ऐसी नारी ही एक आदर्श जननी बन सकती है जोकि शत गुरुओं से भी श्रेष्ठ होती है।”

मेरे इन शब्दों को सुनकर वह कुछ देर के लिए मौन हो गई और दृष्टि शून्य की ओर उठ गई। कदाचित् वह किन्हीं विचारों में उलझी हुई थी ? वह कुछ कहना चाहती है ऐसा मुझे भास हुआ, पर...पर जित्ना हिलती हुई दृष्टिगत नहीं हुई। तभी आनन्द ने मेरे समीप आकर कहा, “आज घूमने नहीं चलोगे जीवन। क्या उत्तर दूँ, असमंजस में पड़ गया मैं ? आनन्द मेरा सहपाठी ही नहीं अपितु घनिष्ठ मित्रों में से था। आवास स्थान के रूप में भी एक ही कमरा था। पढ़ने लिखने में एक दूसरे की मदद ही नहीं करते थे बल्कि हर चीज में एक दूसरे का साझा था। इनके अलावा भी क्षेत्र और वृत्ति इतनी मिलती जुलती थी कि हमारा अधिकांश समय एक साथ ही बीतता था। बहुत-सों को हमारी मित्रता पर डाह थी; किन्तु हमने उसकी चिन्ता नहीं की थी ? उसका हृदय बड़ा विशाल था। वह जाति और अर्थ की दृष्टि से हीन था इसलिए भी बहुत से सहपाठी उससे किनारा किया करते थे। मगर मैंने उसके प्रति कभी उपेक्षा के भाव नहीं रखे थे। कारण मेरा परिवार धन-धान्य से परिपूर्ण था और मैं बचपन से ही जाति पाँति के भेद भाव से दूर रहता था। दूसरे हमारे परिवार में भी कोई असुस्थता को अभिशाप नहीं मानता था। बाबूजी कहा करते थे, “मनुष्य के साथ प्रेम करने का ही पाठ शास्त्रों ने बताया है, घृणा करना पाप है। महात्मा गांधी जी का कहना है कि छुआछूत की बात हिन्दू धर्म के लिए कलंक है। इसको मिटा देना चाहिए। सब में भगवान का वास है, फिर यह घृणा कैसी ?” इन्हीं संस्कारों ने मुझे आनन्द के समीप ला पटका और उसका सामिप्य ग्रहण करने से मेरी रुचि साहित्य की ओर बढ़ गई, यहाँ तक कि उसने लिखने-लिखाने को भी बाध्य कर दिया। हिन्दी जगत की

दृष्टि में वह चाहे कुछ भी हो; किन्तु मेरी दृष्टि में वह एक सफल कवि था। एक बार वह विद्यालय के मंच पर से कविता पाठ करके उतर रहा था कि किसी सहपाठी ने व्यंग्य कसा—

“एक नीच के विचार भी इतने उच्च हो सकते हैं।”

उसने होठों पर मृदु हास्य की रेखा अंकित करते हुए कहा, “बन्धु ! मानव जन्म से ही न तो मस्तक पर रोली लगा कर आता है न गले में यज्ञोपवीत। जो सत्यकार्य करता है वह द्विज है और जो कुकर्म करता है वह नीच।”

— इस उत्तर ने उसे लज्जित कर दिया और प्रोफेसर लोग भी दंग रह गये। तब से उसकी विद्यालय में धाक बन गई और किसी को उँगली उठाने का मौका नहीं मिला। ऐसे ही अद्भुत साथी की छत्रछाया में मैं समय काटता आ रहा था। सच पूछो तो उससे मुझे भाई का सा स्नेह मिला था, फिर मैं कैसे ठुकरा सकता था उसकी इच्छा को ?

— सहसा मिस पांडे उठ खड़ी हुई और हाथ जोड़ते हुए बोली, “क्षमा कीजिए, मैंने आपका बहुत सा समय ले लिया।”

मैं यही कहने वाला था कि इस में क्षमा की क्या आवश्यकता है ? लेकिन वह चली गई तेजी के साथ, बिना मेरा उत्तर सुने ही। उसके चले जाने पर मैंने कहा, “किधर चलोगे आनन्द ?”

“वही पुरानी जगह।”

“सिधिया घाट।”

“हाँ।”

“प्रतियोगिता के उपरान्त कहाँ चले गये थे तुम ?”

“रोटी की जुगत लड़ाने।”

“क्या कोई नई ट्यूशन मिली है ?”

“हाँ, प्रोफेसर पथिक ने बताई थी।”

“पसन्द आया शिष्य।”

“शिष्य नहीं शिष्या।”

फिर मौनता छा गई हम दोनों के बीच । आनन्द किन्हीं विचारों में उलझा बढ़ रहा था गन्तव्य स्थान की ओर । ओर...ओर मैं भी सोच रहा था मिस पांडे के विषय में, कौन है वह, पिता क्या करते हैं उसके ? इसी बीच वह स्यान आ गया, जहाँ पर बैठ कर हम कितनी ही संध्या बिता चुके थे ? आनन्द कविता की रचना करता और मैं नई कहानी का प्लॉट सोचा करता था । लौटने का कोई समय निश्चित नहीं था हमारा और कभी कभी तो वहीं सवेरा हो जाता था । ऐसी अवस्था में होस्टल सुपरिन्टेंडेंट से सुनना भी पड़ जाता था । आनन्द ने बैठने का स्थान साफ़ करते हुए कहा, “आज की रात सुहावनी होगी जीवन ।”

“तो क्या यहीं काटने का इरादा है ?”

“इच्छा तो ऐसी ही है,” आनन्द ने बैठते हुए कहा

“कल पहला पीरियड मजूमदार का ही है, इस बात को भी ध्यान में रखना आनन्द,” मैंने उसके समीप बैठते हुए कहा ।

उसने उत्तर नहीं दिया । कुछ देर तक गंगा के पवित्र जल से क्रीड़ा कर नोट बुक पर लिखना आरम्भ कर दिया । मैंने उसके विचारों को तोड़ना उचित नहीं समझा । कुछ देर के उपरान्त अपनी नायिका का चित्रण खींचा । पढ़कर देखा तो वह...वह स्नेह का चित्र अंकित हो गया था । क्षणिक भेंट में ही हृदय में उतर आई है इस बात का पता मुझे जाह्नवी के तीर पर लगा । न जाने मन और क्या क्या सोचता ? आनन्द ने मेरी बांह खींचकर प्रफुल्लित मन से कहा, “कितनी सुन्दर बन पड़ी है कविता आज, सुनोगे क्या ?”

“इसके बिना पीछा छूटना भी तो मुश्किल है,” मैंने मुसकराते हुए उत्तर दिया ।

आनन्द ने कविता पाठ किया—

रात है कितनी सुहावनी बादलों की कालिमा में,
चमक रही है दिव्य ज्योति चन्द्रमा की लालिमा में ।
लग रहा है, चाँदनी भी जा रही है शृंगार करने,

दहकती इस आग सी को सुलगता अंगार करने ।

सोच लो होना है कल क्या, बीत जायेंगे ये सपने,

कल न होगी अपनी मंजिल, अपने होंगे कल न अपने ॥

“बहुत खूब, कितना सुन्दर बन पड़ा है, अपने होंगे कल न अपने,”
मेरे मुख से निकल पड़ा ।

“आगे सुनो जीवन”, आनन्द ने कुछ गम्भीर स्वर में कहा ।

सुलगता अंगार देखो कोयला बन जायेगा कल,

मुँह छिपा लेगा यह चंदा, मित्र भी बन जायेगा खल ।

पुष्प बन जायेंगे कंटक, स्वप्न में अंधकार होगा,

धूल बन जायेगी कहानी, फिर कहाँ से प्यार होगा ?

क्या भरोसा रात का है, ये भी यूँ ही बीत जाये,

क्या पता है चन्द्रमा भी कल यहाँ आए न आए ।

कौन मंजिल फिर हमारी कौन फिर संसार होगा,

आज ही दीपक जला लें, कल नहीं अधिकार होगा ।

बीतता संसार जाता बन रही राहें निराली,

जा रहा है चन्द्रमा भी, आ रही है रात काली ।

हो चला चंदा पराया, दीप को अपना बना ले,

आओ राही आज दिन हम दीप प्रियतम का जला लें ॥

कितनी व्यथा भरी हुई थी उसकी कविता में ? आज उसकी हृदय की कसक उभर आई थी । बरसों से बना हुआ फफोला अनायास ही इस सुहावनी निशा में फूट गया था । कदाचित् उसकी मंजिल छूट गई थी और परवशता की झंझा ने उसे निराली राह पर पटक दिया था, जहाँ पर पुष्प कंटक और स्वप्न अंधकारमय हो गये थे ।

उसके सिसकने की आवाज मेरे कानों में पड़ी । वह घुटनों में सिर दिए सिसकियाँ भर रहा था । मैंने उसके अमूल्य अश्रुओं को रुमाल में सँजो कर पूछा, “तुमने भी किसी से प्रेम किया था आनन्द ?”

“प्रेम, मत पूछो जीवन इस करुण गाथा को, बस इतना ही समझ

तो कि प्रेम एक अंधा नेता है, जो इसके पीछे चलता है, रास्ता भूल जाता है।”

“तुम प्रेम की चाह नहीं पा सके आनन्द, बल्कि अपना रास्ता ही भूल गये उसमें, वह तो जीवन रूपी पुष्प का मधु है।”

“कभी-कभी मधु विष भी बन जाता है जीवन।”

“फिर तुम्हें प्रेम करना आता ही नहीं आनन्द, तुम सरीखे इंसानों के अनुभव पर ही मोपासा इस निश्चय पर पहुँच सके थे कि प्रेम किस प्रकार किया जाता है, इसे केवल स्त्रियाँ ही जान सकती हैं।

“अभी प्रेम का फंदा गले में नहीं पड़ा है जीवन अन्यथा ऐसी बातें मुख से नहीं निकलतीं।”

“मैं तो समझता हूँ आनन्द कि प्रेम सूर्य की भाँति चमकता है और जिसे वह स्पर्श कर लेता है उसके जीवन में चेतनता आ जाती है।”

“ठोकर लगने से पूर्व मेरे विचार भी ऐसे ही थे जीवन, प्रेम को मनुष्यत्व का रूप ही नहीं देता था बल्कि उसे स्वर्ग समझ बैठा था।”

“ठोकर,” मैंने आश्चर्यचकित स्वर में दोहराया।

“हाँ, ठोकर जीवन, कभी उसे भी जान पाओगे, धुँआ और प्रेम छिपाया नहीं जा सकता, इस बात को तो मानते हो।”

“हाँ।”

“अभी इसी को ठोकर समझो।”

उस समय मैं उसके उत्तर से सन्तुष्ट नहीं हुआ, फिर भी कुछ आगे पीछे का साहस मुझ में नहीं था। रात्रि आधी से अधिक बीत चुकी थी। पूर्णमासी का पूरा चाँद जाह्नवी से अठखेलियाँ कर रहा था। प्रकृति के प्रेमी नौका विहार करके कभी के लौट चुके थे और नाविक विश्राम के लिए अपनी झोंपड़ियों में जा चुके थे। हम दोनों तीव्रता के साथ होस्टल की ओर बढ़ गये और जिस समय शैया पर लेटे उस समय दो बज चुके थे। आनन्द करवट बदलते ही निन्द्रा में खो गया और मैं आज की भाँति जागता रहा था। दोनों जागरण में जिज्ञासा एक ही थी। रूप

एक ; किन्तु पहलु दो थे । सरिता के दोनों छोरों के समान मेरी जीवन सरिता में स्नेह और स्मृति दो पाठ बन कर आई थी । उसकी गति में कौन प्रवाह बनकर आई ? काँच और कंचन की उपमा से किस-किस को भूषित किया गया ? इसका निर्णय मैं अपंग होकर भी नहीं कर सका हूँ । आनन्द ! उफ ! वह भी इस दुनिया में नहीं रहा ; अन्यथा उसी से समाधान हेतु पूछता । कहा करता था, “नारी के नयनों में ईश्वर ने अपने दो दीप रख दिए हैं जिससे संसार के भूले लोग उनके प्रकाश में अपना खोया हुआ रास्ता देख सकें ।” आज इस कथन की स्मृति में सोचता हूँ, क्या संसार के भूले लोगों में से मैं भी एक हूँ, क्या मेरा खोया हुआ रास्ता भी मिल सकता है ? नहीं, असम्भव है, हृदय के उत्तर के साथ ही पलकें झुकी जा रही हैं, अब मैं उन्हें बरबस खोलने का प्रयत्न नहीं करूँगा ।



पहली भेंट में, मेरे मन में उसका पूरा परिचय पाने के सिवाय और कोई विशेष बात नहीं आई; किन्तु मनोविज्ञान का ज्ञाता होने के कारण स्नेह के भावों को अवश्य पढ़ लिया । मुझे लगा कि वह उसी पल की राह में पलकें बिछाये हुए थी, जिसे नित्य ही किसी न किसी अवसर पर आग्रह पूर्ण दृष्टि से देखा करती थी, जिसकी वक्तृता का एक-एक शब्द उसकी हृदय तंत्री को बजा जाता था । उससे परिचय हो जाने पर स्नेह एक नये जगत में विचरने लगी, और मजा यह है कि मैंने किसी दिन भी गर्दन उठाकर उसके रूप लावण्य को निहारा तक नहीं—अब परिचय पर से झिझक का आवरण हटते ही घनिष्टता ने आ अपनाया । हृदय की धड़कन दूर हो गई ।

इसके बाद नौ वर्ष का इतिहास है । उस इतिहास का हरेक पृष्ठ, उस पर लिखा हुआ हरेक शब्द मुझे कंठस्थ है । रात्रि की नीरवता में, या किसी एकान्त स्थान में बैठ कर या लेट कर उसी स्मृति को ताजा रखने की चेष्टा किया करता हूँ मैं ? ”

एक दिन आनन्द को हल्का सा ज्वर आ गया । उस दिन वह कालेज न जा सका । बड़ी कठिनाई से मेरा समय कटा । लौट कर होस्टल पहुँचा तो आनन्द को ज्वर की बेहोशी में पाया । थर्मामीटर लगा

कर देखा तो ज्वर 104° था। घबराहट के मारे हाथ पाँव फूल गये। जैसे तैसे करके सुपरिन्टेंडेंट साहब को सूचित किया। तत्काल ही वे देखने के लिये आये। ज्वर कम करने के उन्होंने कई उपाय बताये, पर कोई सफल न हो सका। संध्या समय डाक्टर साहब देखने के लिए आये उन्होंने परीक्षण कर बताया कि टाइ-फाइड है, एतियात की जरूरत है, तनिक सी लापरवाही...। इससे अधिक डाक्टर साहब ने कुछ नहीं कहा। मैं उनके आशय को समझ गया था। वे दवाइयाँ बिखकर चले गये। उनके जाने पर मैंने सोचा कि किसी नर्स का प्रबन्ध कर दूँ ? मजूमदार ने सलाह दी कि हॉस्पिटल भेज दिया जाये, यहाँ की अपेक्षा वहाँ पर मरीज की देख-भाल भली-भाँति हो जायेगी। मगर आनन्द दोनों में एक के लिए भी तैयार नहीं हुआ ? उसकी इच्छा के विरुद्ध कार्य करना उचित नहीं समझा गया। किसी प्रकार स्नेह को भी उसकी बीमारी का पता चल गया। वह उसी संध्या को देखने के लिए ही नहीं आई अपितु उसकी देख-भाल का सारा भार उसने अपने ऊपर ले लिया रात्रि को ठहरने देने के लिए मजूमदार स्नेह के लिए तैयार नहीं हुए। उसने कालेज से छुटियाँ ले ली। सवेरे से रात्रि के दस बजे तक वह आनन्द की टहल में ही रहती। इसके बाद की देख-भाल मेरे ऊपर रह जाती। सेवा और पथ्य ने आनन्द को टाइ-फाइड से ग्यारह दिन में छुटकारा दिला दिया; किन्तु कमजोरी अभी शेष थी।

इसी बीच मुझे स्नेह को समीप से देखने का अवसर मिला और एक रात्रि को उसे होस्टल छोड़ने जाते समय मार्ग में कह ही जो दिया कि मेरे विचार और चिन्तन तुम्हारे से सोलहों आने मिलते हैं। वास्तविकता में दोनों के ही मन मानों एक ही आदर्श की दीपशिखा हैं।

उसने मेरे चेहरे की ओर ध्यान से देखते हुए उत्तर दिया, “पर हम दोनों के परिवेश में कितनी भिन्नता है जीवन ? तुम्हारे पिता बहुत बड़े जमींदार हैं, कारोबार भी बहुत अच्छा है, दिल्ली में आलीशान भवन है और ढिबाही में भी महल जैसा मकान है। सुखी परिवार के साथ

तुम्हारा भविष्य भी गौरवमय और उज्ज्वल है और और मुझ में हर रोज़ की हीनता एवं तंगदस्ती की ग्लानि कितनी है, मेरे सिवा इसे और कौन समझ सकता है ?”

यथार्थ को स्नेह के मुख से सुनकर मैं आश्चर्यचकित रह गया । यह सब कुछ वह कैसे जान पाई और मैं प्रयत्न करने पर भी कुछ न जान पाया उसके विषय में । यह मेरी कमजोरी थी और अब समझ में आ रहा है कि प्रेम इंसान को निर्बल कैसे बना देता है ? इसके बाद मैं शब्दों का चयन ही करता रहा और वह नमस्कार कर होस्टल की सीढ़ियों पर चढ़ गई ।

इस बात को कई दिन बीत गये । आनन्द चलने फिरने योग्य हो गया; किन्तु कालेज जाने की अनुमति उसे अभी नहीं मिली थी । कालेज की समाप्ति पर स्नेह आनन्द के पास आ जाती थी और मेरे बाजार से लौटने पर वह अकेली ही चली जाती थी ।

इसी बीच संध्या के झुटपुटे में मैं फल लेकर लौटा, आनन्द स्नेह से कुछ कह रहा था उसे सुनने के लिए मैं कुछ हट कर खड़ा हो गया ।

‘मरीचिका की ओर मत दौड़ो स्नेह, जीवन तुम्हारे लिए स्वप्न ही रहेगा । चांद को हाथ से पकड़ने का प्रयत्न मत करो ।’

वह कुंठित स्वर में बोली, “आनन्द भैया ! सब समझती हूँ निरी बच्ची नहीं रही अब ।”

“किन्तु...।”

“किन्तु क्या आनन्द भैया ?”

“जीवन के आगे अपनी स्वतन्त्र सत्ता को खो बैठती हो तुम ।”

“ठीक कह रहे हो आनन्द भैया, उनको देखते ही विचारों की स्थिरता न जाने कहाँ लोप हो जाती है, सच मानो सब कुछ उसट-पलट हो जाता है ?”

कुछ क्षण चुप रहकर आनन्द ने कहा, “वैसे तो जीवन बुरा नहीं है, उसका हृदय स्वच्छ है, कदाचित् तुम दोनों एक दूसरे को पाकर खुशी

हो जाओ, किन्तु यह सब कुछ होगा ठाकुर साहब के घरमानों को कुचल कर, इस पर भी समाज तुम्हें जीने देगा, इसका मुझे शक है और कहीं माँ के पाप समाज की नपीरी के स्वर में बोल उठे तो ...।”

स्नेह आनन्द के कथन को बीच में ही काटते हुए बोली, “मैं क्या करूँ आनन्द भैया ? तुम्हीं बताओ, इस दुनिया में मेरा भी तो कोई नहीं, अगर माँ के पाप मेरे भविष्य पर तुषार बन कर छा गये तो यह पगली जाह्नवी की गोद में जा बैठेगी।”

“आत्मघात महापाप है।”

“इसके अलावा माँ के पापों का भी तो कोई प्रायश्चित्त नहीं ?”

“क्यों नहीं स्नेह, आदर्श पत्नी बनकर भी तुम प्रायश्चित्त को पूरा कर सकती हो, अपनी सच्चरित्रता से खून के कलंक को धो सकती हो ?”

“मैं इसी मार्ग का अनुसरण करूंगी।”

“अच्छा, अब तुम जाओ, इन बातों का जिक्र जीवन से न करना, मैं स्वयं उसके हृदय को टटोल कर देखूंगा।”

कुछ देर के बाद स्नेह कमरे से बाहर निकली और मैंने प्रवेश किया। थैले में से सन्तरे को लेकर छीलते हुए आनन्द ने गम्भीर स्वर में कहा, “ठोकर की बात तो याद होगी जीवन।”

“क्यों नहीं आनन्द उसमें तुम्हारे जीवन का रहस्य जो छिपा है ?”

“आज उसी रहस्य को खोलने का अवसर आ गया है जीवन। मैंने जिसको प्यार किया था वह थी चंदा। जैसा नाम था वैसा ही लावण्य भी। उसका पिता चमड़े का व्यापारी था और मेरा पिता एक मामूली किसान। हमारे प्यार की कहानी गाँव का चप्पा-चप्पा जानता था। रजवाहे का शीतल जल हमारे तरानों में अपनी गति को भूल जाता था और चंद्र हमारी प्रणय गाथाओं का साक्षी था। एक दिन मैंने हँसी हँसी में कहा, “गरीब इंसान कैसा होता है जानती हो चंदा।”

उसने मदभरे नयनों से मेरी ओर देखा और फिर गर्दन हिलाकर भाग खड़ी हुई।

मैंने भाग कर उसे पकड़ते हुए कहा, “जैसा बिना पंखों का पक्षी या बिना मस्तूलों का जहाज ।”

वह ठट्ठा मार कर हँसी, बोली, “मुझे ऐसा ही पक्षी चाहिए था ।”

“क्यों ?”

“कहीं उड़कर और बसेरा न बना ले ?”

“मगर पैसे की चीजों के लिए जरूरत तो पड़ती है, प्यार सब कुछ तो नहीं खरीद सकता ।”

“आत्मा की किसी भी आवश्यक चीज को खरीदने के लिए पैसे की जरूरत नहीं पड़ती ?”

इस प्रकार हमारा प्रेम बढ़ता गया । वह मिडिल पास करके घर में बैठ गई और मैं हाई स्कूल पास करके कालेज में पढ़ने के लिए बनारस चला आया । पिता में पढ़ाने का सामर्थ्य नहीं था । इस लिए खुद ही पैरों पर खड़ा होना पड़ा । चंदा की इच्छा थी कि मैं बहुत बड़ा इंजीनीयर बनूँ । उसकी साध को पूरा करने के लिए मैंने इस लाइन को अपनाया; मगर वह मेरी राह न देख सकी । उसका प्यार झूठा निकला । चाँदी की चमक ने सब वायदों को भूला दिया । वे कहानियाँ, वे स्वप्न सब अधूरे ही रह गये । वह एक पैसे वाले की व्याहता बन गई । तब से मुझे विश्वास हो गया है जीवन ! धन वह अतुल सागर है, जिसमें प्यार इज्जत, जमीर और सच्चाई डुबाये जा सकते हैं, मगर घृणा नहीं । आज भी मेरे पास धन नहीं है इस लिए घृणा को अपनाये हुए हूँ, चाह कर भी मैं तुम्हारे से घृणा क्यों नहीं करता, तुम भी तो उसी समाज के कीट हो ?”

मैंने उसके दिल को दुखाना उचित न समझा, “तुम जो चाहो कह सकते हो आनन्द, उसके लिए मैं तुम्हें उलाहना नहीं दूँगा; पर इतना अवश्य कहूँगा कि अगर मैं दौलतमंद अपने को समझता, अहंकार, ऐयाशी और विलासिता के गर्त में डूबा हुआ मिलता, तुम्हारा हितैषी नहीं । मैं तो विद्या और सच्चरित्रता को ही सच्ची दौलत समझता हूँ ।”

“यह आदर्शवाद का रंगीन जामा चन्द दिनों का होता है जीवन ।”

“वे चन्द दिन ही तो वास्तविक जीवन है आनन्द ।”

“और वास्तविक जीवन का साथी चुना है स्नेह को ।”

“हाँ, उसी को चुनना चाहता हूँ, वह सम्यता और संस्कृति की प्रतीक है ।”

“कैसे जाना, उसका बाह्य रूप देखकर ?”

“हाँ ।”

मेरे उत्तर को सुनकर वह मौन हो गया कुछ देर के लिए, फिर दीर्घ निःश्वास छोड़ता हुआ बोला—

“जीवन ! चन्द्रमा के समान स्नेह भी कलंकित है, उसकी माँ लखनऊ की प्रसिद्ध गायिका शबनम थी । उसके पिता शिवशंकर पांडे हमारे गाँव के जमींदार और सम्मानित व्यक्तियों में से एक थे । शबनम ने अपना बिनौना जीवन त्याग कर पांडे जी के साथ नया जीवन आरम्भ किया था । उसी के कलि रूप में पनपी स्नेह । अब अनाथ है । पांडे जी के सम्बन्धी उससे किसी प्रकार का सम्बन्ध रखना नहीं चाहते हैं । बसीयत के अनुसार केवल सौ रुपये माहवार इसे मिलते हैं, जिनसे वह शिक्षा पूरी कर रही है ।”

स्नेह एक वेश्या की पुत्री है, हृदय को विश्वास नहीं होता था ; किन्तु आनन्द के कथन में अविश्वास की भी कोई गुंजाइश नहीं थी । मैंने हड़ता के साथ उत्तर दिया, “माँ के पाप बेटी के सिर पर मंडने का हमें कोई अधिकार नहीं आनन्द । स्नेह को उच्च समाज में स्थान मिलना ही चाहिए ।”

“और तुम्हारे भाई उसे माँ का स्थान दिलाना चाहते हैं ।”

“उनके सपने पूरे नहीं हो सकेंगे, स्नेह उन्हीं की बहन बेटियों के इमान स्थान पायेगी ।”

“समाज से बहिष्कृत हो जाओगे ।”

“एक नारी के उद्धार के लिए हरेक दंड स्वीकार होगा ।”

“जीवन ।”

“आनन्द ।”

इस प्रकार वह रात हम दोनों की स्नेह के भविष्य के विषय में बीती और मैंने उसके साथ विवाह की स्वीकृति आनन्द को दे दी । उसे पाकर वह किसी कन्या के ऐसे पिता के समान ही खुश हुआ, जोकि कन्यादान से मुक्त हो चुका हो ।

इस बात को कई सप्ताह बीत गये । स्नेह से मैं कॉलेज में बात न कर सका । उसने भी बोलने का प्रयास नहीं किया । अनायास ही कला प्रदर्शनी में भेंट हो गई । वह बचकर निकलना चाहती थी । मगर मैंने मौका नहीं दिया । वहाँ से निकल कर मैंने नौका विहार का प्रस्ताव रखा । स्वीकृति के रूप में वह मेरे साथ चल दी । जाह्नवी के तट पर संध्या की निर्जन समीर उस समय मृत्तिका को स्पर्श कर बह रहा था । कुछ लोग इधर-उधर घूम रहे थे । मैं उसका हाथ पकड़ कर नौका पर उतरा । नाविक ने नौका को जल प्रवाह की ओर छोड़ दिया । तट से कुछ दूर हटने पर मैंने धीरे-धीरे बातें शुरू कीं । वे थीं मेरे आदर्श और जीवन के विषय में । मैंने कहा, “बाबूजी ! मुझे बहुत बड़ा इंजीनियर बनाना चाहते हैं । किसी शाही खानदान से सम्बन्धित रायसाहब की इकलौती बेटी से वे मेरा विवाह करना चाहते हैं ; किन्तु मैं.....।”

मैं वाक्य पूरा न कर सका । उसने मेरे आशय को समझ कर कहा, “मानव का जीवन उसका अपने हाथ में होता है । यदि वह उस जीवन की गठन किसी अन्यत्र को करने दे तो मिट्टी का पुतला बन जायेगा ?”

“तुम्हारे इन शब्दों ने वह शक्ति प्रदान की है जिसे....।”

“स्नेह ने मेरे मुँह के आगे हाथ रख कर कहा, “बस बस, रहने भी दो, जो कहना चाहते हो उसे मैं पहले ही जानती हूँ ।”

“सच ! जो मैं कहना चाहता हूँ और जिसे तुम सुनना चाहती हो वही ना ।”,

“.....”

“

कुछ देर तक शांत रह कर चन्द्र को स्निग्ध दृष्टि से देखते हुए स्नेह ने कहा, इंजीनियरिंग की परीक्षा हो चुकने पर तुम जाओगे एक ओर और मैं दूसरी ओर। इन मिलन घड़ियों की बात सोचती हूँ ?”

“चिन्ता ने कभी किसी को नहीं जीने दिया है, जो कुछ करना है, उसका मैंने निश्चय कर लिया है ?”

“क्या निश्चय किया है जीवन ?”

“तुम्हारे बिना मेरा जीवन वह सदन है, जिसमें किसी का आवास नहीं, वह दीपशिखा है जिसमें प्रकाश नहीं, वह कविता है जिस में रस नहीं ?”

“भावुकता अंधी होती है जीवन ।”

“पर उसने मुझे अंधा नहीं किया ।”

“अंधा वह नहीं जिसकी आँखें फूट गईं हो, बल्कि वह है जो बिना सोचे समझे ही अनजानी राह की ओर बढ़ता चला जाता है ।”

“मेरा तुम्हारे प्रति सात्विक प्रेम है शारीरिक नहीं ।”

“तब तो वह सदैव अमर रह सकता है, किसी प्रकार के बंधन उसका गला नहीं घोट सकते, मैं उसको अंगीकार करती हूँ जीवन ?”

“स्नेह ! मुझे समझने का प्रयत्न करो। प्रेम आशामय है और कभी निष्फल ही होता ।”

“इतना ही नहीं जीवन, वह कभी दावा भी नहीं करता, लेता भी नहीं सदैव देता है। प्रेम सहन करता है विरोध कदापि नहीं करता, न बदला ही लेता है ।”

“आखिर चाहती क्या हो स्नेह ?”

“अपने स्वार्थ के लिये किसी को विरोधी बनाना नहीं चाहती, किसी के अस्मानों को जलाकर अपना महल खड़ा करना नहीं चाहती ।”

“इसका मतलब है कि घर वालों की खुशी के लिए अपने प्यार की आहुति दे दूँ, जिसके सहारे जीवन को जीवन समझा है उसे इतने ऊँचे

से गिरा दूँ कि उसका अवशेष भी न रहे, ऐसा मुझसे न हो सकेगा।

अनजाने में एक ठंडी साँस निकल गई स्नेह के हृदय से। उसने अवरोध कंठ से कहा, “वही करो जीवन जिसमें घर और समाज खुश हो।”

“वही करूँ,” मैंने उसकी ओर आश्चर्यचकित दृष्टि से देखा।
“इतनी दूर आकर क्या मैं राय साहब की बेटी से विवाह करूँगा, यह जीवन का खेल है गुड्डे गुड़ियों का नहीं?”

“तो फिर क्या करोगे?”

“अकेला रहना अच्छा है उससे।”,

“यह भी अच्छा नहीं कि इंसान अकेला रहे और शादी ऐसा रोमान्स है जिसमें नायक की मौत पहले ही हो जाती है?”

“क्या मन पसन्द की शादी में भी?”

“नहीं, पर मन का साथी मिलेगा कहाँ?”

मैंने उसके हाथों को पकड़ते हुए कहा, “क्या तुम भी मुझे छोड़ जाओगी?”

“मैं”, आश्चर्यचकित स्वर में स्नेह के मुख से निकला।

यथार्थ को सुनकर मन इतना भयभीत क्यों हो जाता है? इसे स्नेह न समझ सकी शंकित स्वर में बोली, “बड़ी उलझन में फँस गई हूँ जीवन, तनिक और स्पष्ट कहो।”

“कितनी बार कहलवाओगी स्नेह? आखिर तुमने मुझे समझ क्या रखा है, अंतिम बार इतना ही कहूँगा कि मैं तुम्हें छोड़ नहीं सकता।”

सुन कर स्नेह काँप उठी। उसे देह का रक्त-संचरण रुकता-सा प्रतीत हुआ। जीवन जो कुछ कहना चाहता था उसका आभास पा गई थी वह; किन्तु उसी क्षण एकाएक आकाश मेघों से घिर आया। समीर तीव्रता से प्रवाहित होने लगा। उसने कहा, “आधी आ रही है जीवन! उठो, चलें।”

“पहले वचन दो, मेरे पास रहोगी न?”

स्नेह मेरी व्याकुल आँखों को बहुत देर तक देखती रही। उसकी

आखिँ बता रही थीं कि वह किसी दुविधा में फँसी हुई है ? खिन्न स्वर में बोली, “भूल कर रहे हो जीवन ? मुझ पतिता को कोई स्वीकार नहीं करने का । तुम अपने स्वजनों और समाज से परिचित ही हो । इस देश में वेश्या की बेटी का विवाह उच्चकुल में होने का चलन अभी जायज नहीं है । मैं तो तुम लोगों के लिए...” सिसक उठी स्नेह ।

मैंने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए दृढ़ता के साथ कहा, “हमें इस बात की ओर नहीं देखना चाहिए कि कोई स्वीकार करेगा या नहीं । इस दुनिया में गुणों की पूजा होती है, किसी बड़े कुल में उत्पन्न होने की नहीं ?”

“आदर्श दुनिया को नहीं भुका सकता ।”

“दुनिया भुकती है, भुकाने वाला चाहिए ।”

“किन्तु तुम्हारे स्वजन ?”

“समझ लो, उन्होंने भी नहीं अपनाया ।”

स्नेह मानों सिहर उठी, बोली “इसका मतलब है कि मेरे लिए सब को छोड़ दोगे, धन सम्पत्ति भी, तुम्हारी मनोकामनाएँ भी..... । नही जीवन, मैं स्वार्थ को अपनाना नहीं चाहती ।”

मैंने खेदित स्वर में कहा, “यह तो कितनी ही बार सुन चुका हूँ ? इन्कार से काम नहीं चल सकता स्नेह । स्पष्ट रूप से सुन लो कि मैं तुम्हें चाहता हूँ, बस, अंतिम निश्चय है मेरा । तुम नहीं जानतीं कि तुम्हारे बिना मेरा भविष्य सूना है और जीवन बिना पतवार की तरंगि ।

“तुम दुनिया को नहीं जानते जीवन ।”

“जानता हूँ, अच्छी तरह जानता हूँ, दुनिया बदले का घर है, इसमें जो बोता है वह काटता है ।”

“मुझे अपना कर तुम्हारी पीढ़ी न चल सकेगी ।”

“इसकी चिन्ता नहीं; क्योंकि जो हाल पत्तों का होता है, वही इंसान की पीढ़ी का होता है ।”

“यदि मेरा हृदय कलुषित हो तो !”

“कदापि नहीं ! मुझे विश्वास है कि तुम हृदय से कलुषित नहीं हो सकतीं ।”

“विश्वास”, स्नेह के मुख से निकला । उसकी पलकों में कम्पन आ गया, उसके हृदय में हलचल होने लगी । हर्ष, आशा और स्वप्न मेरे हाथ पर मुँह रख कर अस्फुट स्वर में उसने पुकारा, “जीवन ।”

मैंने स्नेहसिक्त स्वर में कहा, “हूँ ।”

“मेघ बरसना ही चाहते हैं, घर चलो ।”

“पिता जी ! बूँदें पड़ रही हैं, घर चलो, “राजीव ने अतीत की कल्पना को छिन्न-भिन्न कर दिया । मेरे मुख से निकला, “चलो, बेटा ! दीपक कहाँ है ?”

“वह पहले ही चला गया है ।”

रास्ते में राजीव ने प्रश्न किया, “पिता जी ! माँ कहतीं थीं कि आप कभी नहीं आयेंगे ।”

“झूठ कहती थीं बेटा, भला मैं तुम सरीखी संतान के बिना रह सकता था ।”

“फिर मेरी वर्ष-गांठ पर क्यों नहीं आये थे ? लोगों से घर भरा पड़ा था । खूब मिठाइयाँ बाँटी गई थीं ? मुझे नये-नये कपड़े पहनाये गये थे । अच्छे-अच्छे खिलौने मिले थे । सब खुश थे; लेकिन माँ रोई थीं ।”

“अच्छा तो तुम्हारी माँ खुशी के दिन भी रोई थीं ।”

“हां पिता जी, दादी माँ के कहने से बड़ी मुश्किल से थोड़ा बहुत स्नाया था ।”

घर आ गया था । दौड़ कर राजीव अपनी माँ के कमरे की ओर दौड़ गया । मैं ठगा सा ड्राइंग रूम में खड़ा रह गया । कुछ क्षण उसी अवस्था में बीते, फिर अपने कमरे में पहुँच कर कटे वृक्ष के समान शैया पर गिर पड़ा । किसी की पगध्वनि कानों में पड़ी, जिज्ञासा बढ़ी, हृदय ने कहा, स्मृति तुम्हें क्षमा कर मिलन के लिए आ रही है, मैंने मुँहकस

देखा, द्वार पर भाभी खड़ी थीं, मैंने खुब मन से कहा, “आमो भाभी बैठो।”

“अभी रसोई पड़ी है जीवन भैया, खाना यहीं लाऊँ या...”

“यहीं भेज दो भाभी।”

खाना आ गया, सभी मेरे मन की चीजें बनी थीं, पेट भर कर खाया। इसी बीच मां आ कर बैठ गई बोली, “सारे दिन कहाँ रहता है रे?”

“कहीं नहीं मां।”

“कई दिन से दिखाई नहीं दिया।”

मैंने मां का दिल दुखाना अच्छा नहीं समझा, कह दिया “कुछ लिख रहा हूँ मां।”

“तो क्या सारा-सारा दिन कमरे में ही पड़ा रहता है?”

“इस काम में साधना तो करनी ही पड़ती है मां।”

“ऐसी साधना किस काम की जो घुन की तरह लग जाये, आईने में चेहरा देखा है अपना, मानों बरसों का मरीज हो। जी है तो जहान है बेटा?”

“काठी को कौन बदल सकता है मां? फिर भी भाभी खूब दूध मलाई खिलाती है, शाम को घूमने भी जाता हूँ।”

तभी बाबू जी का स्वर सुनाई दिया, वे मां को पुकार रहे थे, “अजी कहाँ हो, बछराऊँ वालों का खत आया है, वे मंगलवार को आ रहे हैं?”

मां यह कहती हुई उठीं, “आ रही हूँ, आसमान क्यों सिर पर उठा रखा है?”

मैं सोचने लगा कि यह खत किसका है, बछराऊँ में तो अपनी कोई रिश्तेदारी नहीं, फिर कौन आने वाले हैं?

उसी क्षण भाभी ने आकर पूछा, “रोटी लाऊँ भैया।”

“नहीं, थोड़ा सा पानी ला दो।”

भाभी पानी लेकर लौटी तो मैंने प्रश्न किया, “बछरांव से कौन आ रहा है भाभी ? प्रश्न को सुन कर भाभी कुछ घबरा सी गईं, लोटा छूटते-छूटते बचा और माथे पर स्वेद बिन्दु भलक आये। मन को स्थिर कर बोली, “तुम्हारे भैया . . .।”

वाक्य भी पूरा नहीं कर पाई थी कि आवाज पड़ी, “बहू ! रोटी दे जा।” वह आवाज के साथ ही बाहर चली गईं। उस रात दूध नौकर द्वारा आया। पूछा, “भाभी कहाँ है ?” उत्तर मिला, “उनकी तबीयत ठीक नहीं है, इसलिए वे सोने चली गईं।”

नौकर दूध देकर चला गया। सोचा, “भाभी को एक दम क्या हो गया है, कुछ देर पहले तो ठीक थीं। ठंड का मौसम है, सम्भवतः ठंड खा गई हों।” सोच कर जाने को तैयार हुआ। तभी ध्यान आया, सो गई होगी, अब दस बजे रात को जगाना ठीक नहीं है। मैं दूध पीकर शैया पर लेट गया।

“सो गये बेटा, “बाबू जी द्वार पर खड़े पूछ रहे थे।

“नहीं तो बाबूजी, आइये।”

वे अन्दर आकर मेरे पास ही कुर्सी पर बैठ गये। प्रश्न किया, “लखनऊ जा सकोगे जीवन।”

“कब जाना होगा ?”

“रविवार को।”

मैंने सामने कैलेण्डर की ओर देखा। अभी जाने में तीन दिन शेष थे। पूछा, “क्या करना होगा वहाँ जाकर ?”

“ला० कुन्दन लाल की लड़की की शादी है इसी मंगलवार की, मेरे उनसे घनिष्ठ सम्बन्ध रहे हैं, कुछ सौगात भोजना चाहता हूँ।”

शादी से मुझे कुछ चिढ़ सी हो चली थी सो कह दिया, “मैं तो उनमें से किसी को जानता नहीं हूँ ? भैया को क्यों नहीं भेज देते ?”

“जाता तो वही; किन्तु उसे छुट्टी नहीं मिली।”

हार कर कहना पड़ा, “चला जाऊँगा।”

“अच्छा, अब तुम आराम करो, मैं चलता हूँ।”

“मैंने उन्हें नमस्कार किया, वे उत्तर देकर चले गये।”

कई रातें जग-जग कर कटी थीं फिर भी कहानी अधूरी ही पड़ी थी मेरे जीवन की तरह, आज जागरण की शक्ति नहीं थी आँखों में, सो पलकें झुकीं, और झुकी ही रह गईं।



इसके बाद की घटना कुछ अधिक दिनों की है। उस समय मेरी तृतीय वर्ष की परीक्षा हो चुकी थी और स्नेह ने द्वितीय वर्ष की परीक्षा दी थी। ग्रीष्मावकाश की छुट्टियों में घर न जा कर, स्नेह को साथ लेकर नैनीताल आ गया। आनन्द साथ न आ सका था। वह हम दोनों के बीच बाधा नहीं बनना चाहता था। ठहरने के लिए स्नेह को इंडिया होटल पसन्द आया। वहाँ से नैनी लेक व्यू बड़ा सुन्दर दिखाई देता था।

एक दिन संध्या को नौका विहार कर रहे थे। उस समय पहाड़ों के ऊपर अस्त होते हुए सूर्य की लाल आभा थी। नीचे ताल के शीतल जल में उसका प्रतिबिम्ब था। मैंने पतवार चलाते हुए कहा, "सब निश्चय कर लिया है स्नेह।"

उसने हाथ से पानी को उछालते हुए पूछा, "क्या?"

"बाईं ओर देखो, वह पाषाण देवी है, हर इच्छा पूर्ण कर देती है।"

"सच।"

"हाँ।"

"तब तो मैं अवश्य दर्शन करूँगी ऐसी देवी के।"

"बस दर्शन ही...।"

“हाँ, निश्चय तो तुमने किया है, मैंने नहीं।”

“चलो मेरा ही सही, क्या तुम्हारा मन....?”

“उसे छोड़ो जीवन, मन तो चंचल होता ही है।”

“उसका निग्रह करना भी तो कठिन होता है।”

“लेकिन बारम्बार प्रयत्न से वह बश में किया जा सकता है?”

इतना कह कर स्नेह चुप हो गई। उसकी चुप्पी मुझे खल उठी, बोला,
“मौन क्यों हो प्रिये?”

“मौन ही तो सर्वोत्तम भाषण है।” उत्तर मिला।

नौका दूसरे किनारे पर पहुँच चुकी थी। नाविक को आठ आने देकर हम दोनों प्लेट पर आये। बैंड स्टेण्ड पर संगीत के साथ फरमाइशें चल रही थीं। विभिन्न वेशभूषा में नर नारी उसका वहाँ खड़े होकर रसास्वादन कर रहे थे। हम दोनों केपीटोल के समीपवर्ती स्कोटिंग रिक के पास से होते हुए पाषाण देवी की ओर बढ़ गये। सड़क पर विशेष चहल पहल न थी। वहाँ एक आध जोड़ा अवश्य हवाखोरी के लिए जा रहा था। कुछ दूर आगे बढ़कर ताल के किनारे वृक्षों की ओर संकेत कर पूछा, “जानती हो इन वृक्षों को क्या कहते हैं?”

उसने परिहासात्मक स्वर में कहा, “मैं किसी माली की बेटी नहीं हूँ जो वृक्षों को पहचानती फिरूँ?”

“तो क्या सभी बोटिनिस्ट माली के बेटे होते हैं?”

उत्तर को सुनकर वह कुछ भेंप सी गई, बोली, “अच्छा बोटिनिस्ट साहब बताइये।”

मैंने कहा, “इनका नाम है लैला मजनू।”

खिलखिला कर हँस पड़ी वह, बोली, “हर समय बिल्ली को छिछड़े ही नज़र आते हैं।”

“तुम्हें यकीन नहीं आता तो इसी से पूछ लो, “मैंने एक पहाड़ी की ओर संकेत ही नहीं किया बल्कि उससे पूछ ही बैठा, “क्यों भाई, ये किस बीज के पेड़ हैं?”

उसने बताया, “छोटे भुके हुए पेड़ को लंला कहते हैं और बड़े को मजनु ।”

पहाड़ी की बात सुनकर मैंने स्नेह से कहा, “अब तो विश्वास हो गया है तुम्हें ।”

पहाड़ी अपनी राह लगा और हम आगे की ओर बढ़े ।

स्नेह से पूछा, “यहाँ इससे पूर्व आ चुके हो क्या ?”

“हाँ, हॉकी का मैच खेलने आया था दो वर्ष पूर्व ।”

“हार कर गये होगे यहाँ से ।”

“नैनी बंडरस को हरा कर गये थे । उसी वर्ष यहाँ की हर चीज़ से परिचय कर लिया था ।”

“तब गाइड की जरूरत नहीं पड़ेगी हमें ।”

“बिल्कुल नहीं !”

हम पाषाण देवी के समीप पहुँच गये थे । जूते उतार कर जैसे ही सीढ़ियाँ चढ़ने लगा वैसे ही स्नेह ने मुझे रोकते हुए कहा, “क्या माँगोगे ?”

“तुम्हें ।”

“पानी जैसी चंचलता को रोको जीवन, इसके फेर में पड़कर मनुष्य ऊँचा नहीं उठ सकता ।”

“फिर किसके सहारे उठ सकता है ?”

“आशाओं के सहारे ।”

“यह तुम्हारी भूल है स्नेह, जो केवल आशाओं के सहारे रहता है, शीघ्र ही वह भूखा मर जायेगा ।”

“जीवन ।”

“मुझे माँगने दो स्नेह ।”

“और बाबूजी, उनसे क्या कहोगे ?”

“पहले कुछ भी न कहूँगा, पूछने पर सब चीपट...।”

“तो क्या मुझे...?”

“बबराओ मत स्नेह । बाबूजी मुझे प्यार करते हैं । यहाँ पढ़ने भी बड़ी मुश्किल से भेजा है । वे मुझे एक दिन के लिए भी दूर करना नहीं चाहते थे । माँ का हृदय तो उनसे भी अधिक कोमल है । ऐसी अवस्था में क्या तुम समझती हो कि वे हम दोनों का त्याग कर देंगे ?”

स्नेह का क्षीण स्वर प्रस्फुटित हुआ, “मैं बहुत डर रही हूँ जीवन ।”

“डर दुर्बलता का ही दूसरा रूप है स्नेह, इसलिए इसका अनुभव करना ही पाप है ।”

“अगर वह पाप है तो यह गुनाह है, जो हमारे चेहरे से छिपा नहीं रह सकता ।”

“तुम बड़ी डरपोक हो ।”

“आत्मा के हनन से डरपोक कहलाना ही अच्छा है ।”

“प्रणय के बंधन आत्मा का हनन नहीं कर सकते स्नेह, इस भ्रम को मन से निकाल दो और शुद्ध मन से देवी की अर्चना करो और सुनो, यहाँ से लौटकर रजिस्ट्री करवा कर हम लोग ब्याह कर लेंगे । इस तरह देवी के आशीर्वाद पर सरकारी मोहर लग जायेगी । हमारे साक्षी रहेंगे आनन्द और तृष्णा । इसके बाद मैं दिल्ली जाकर माँ और भाभी से साफ साफ कह दूँगा । वे दोनों बाबूजी और भैया को समझा बुझा लेंगीं । उन्हें क्षमा कर हमें अपना ही पड़ेगा ।”

इसके बाद स्नेह चुपचाप मेरे पीछे देवी के सम्मुख चली आई । उसी क्षण मैं और स्नेह दो भिन्न जल धाराओं की भाँति देवी के संगम पर मिल कर अभिन्न हो गये । महाराज ने प्रसाद दिया और मैंने दक्षिणा स्वरूप सवा रुपया थाली में रख दिया । लौटते हुए, देवी की शक्ति का विश्वास स्नेह के अन्तर में जमाने के अभिप्रायः से मैंने पूछा, “महाराज ! सुना है देवी जब बलि लेती है तो ताल का पानी अपना रंग परिवर्तित कर लेता है ।”

“यह लोगों का भ्रम है बेटा, किन्तु जो देवी के प्रति अश्रद्धा रख

कर इसको विनिष्ट करना चाहता है उसका तत्काल ही नाश हो जाता है।”

“इतनी शक्ति है देवी में।”

“हाँ, बेटी ! एक बार एक अँगरेज ने इसका मुँह काला करने की कोशिश की थी। बस तत्काल ही इसने उसका नाश कर दिया। वह घोड़े सहित ताल में गिर पड़ा यहीं, यहाँ के पानी की गहराई को कोई नहीं जान सका बाबू। दूढ़ने पर भी उस दिन साहब का पता नहीं लगा। आठ दिन के बाद नैनी देवी के पास घोड़े और साहब की लाश निकली थी। तब से हर साल दो चार की बलि ले ही लेती है देवी।”

“देवी का प्रकोप बहुत है बाबा।”

“हाँ बेटी, जैसा प्रकोप है वैसा ही वरदान भी, जो माँगा है वही मिलेगा।”

इसके बाद हम लोग लौट आये। स्नेह के चेहरे को देख कर ऐसा लगता था कि उसकी शंका का समाधान हो चुका है, उसके अंतर का डर निकल गया है और देवी के दर्शन ने उसके अन्दर ऐसी शक्ति प्रदान कर दी है कि वह दुनिया वालों से टक्कर ले सकती है। उसने प्लेटोड के सामने पहुँच कर स्नेह सित स्वर में कहा, “होटल लौट रहे हो क्या?”

“हाँ, डिनर का समय हो गया है।”

“आज मेरी इच्छा वहाँ डिनर लेने की नहीं।”

“और क्या है?”

“बड़े बाजार की ओर चला जाये।”

“उधर इस समय रौनक नहीं होती मैडम, वहाँ से लोग नीचे माल की ओर आते हैं, घूमना है तो तुम भी माल के चक्कर काटो।”

“मैं तो मामू की दूकान तक जाना चाहती हूँ।”

“पूरियों का चस्का पड़ गया है तुम्हें।”

वह मुसकराई और हम दोनों बढ़ गये बड़े बाजार की ओर। वह मेरा सहारा लिए अनोखी चाल से चल रही थी कि एक पहाड़ी ने आ

कर पूछा, “डांडी चाहिए बाबू, आराम से पहुँचा देने ।”

“नहीं भैया,” उत्तर सुनकर वह चला ही था कि एक महिला ने पुकारा, “ऐ, हर्मिटेज काटेज चलेगा ।”

“अपर काला डुंगी रोड पर जो है मेम साहब ।”

“हाँ, वहीं....।”

“बैठिए !”

“वह महिला बैठ गई । पहाड़ी लोग उसे उठा कर चल दिए गन्तव्य स्थान की ओर ।

स्नेह को उस महिला पर अब तक हँसी आ रही थी, पूछ बैठी, “डांडी पर जाना भी कोई पहाड़ी फंशन में शामिल है क्या ?”

“यही तो अभीरों के चोचले हैं ।” और आगे की ओर बढ़ गये हम ।

“गुप्ता एंड को०”, के समीप पहुँच कर स्नेह कुछ ठिठक सी गई, उसकी दृष्टि बाहर टंगे लाल रंग के कोट पर थी, फिर भी मैं पूछ उठा, “क्या कोई साड़ी देखना चाहती हो ?”

“नहीं, इस कोट का डिजाइन मुझे पसन्द है ।”

“चलिए, दिलवाये देता हूँ ।”

इसके बाद दूकान पर पहुँचकर कोट की ट्राई की । वह स्नेह को फिट आया, मानो उसी का नाम लेकर तैयार किया गया था । मैंने पूछा,

“क्या कीमत है इस वन पीस की ?”

“बहुत ही सस्ता है साहब, नीचे इतने में कोई सीने का भी नहीं ।”

“फिर भी कोई कीमत तो होगी ही ?”

“जी हाँ, दूकान की प्रसिद्धि के लिए रियायती कीमत रखी हुई है केवल पेंसठ रुपये । सारा मैटिरियल बढ़िया लगा हुआ है । अगर इसी को एम० बरकत अली के यहाँ सिलवायेंगे तो इतने पैसे स्टीचिंग के माँग लेगा । यहाँ हमारा नया नया काम है, दूकानदारी जमानी है, वैसे बेराइटी देखनी हो तो लखनऊ में हमारे शो रूम में पधारें ।”

मैं जानता था कि नई दिल्ली में इसी स्टीचिंग के कोई सवा सी के

कम बात नहीं करेगा और कपड़ा बगैरा अलग रहा। मैंने कोट को भली भाँति देखकर स्नेह से पूछा, “तुम्हें पसन्द है ना।”

“जी हाँ।”

“बाँध दीजिए साहब।”

“इसे मैं पहने लेती हूँ, आप शाल पैक कर दें।”

बिल देकर हम बाहर निकलने लगे तो उसने कहा, “चिकन बगैरा की आपने साड़ियाँ तो देखी नहीं।”

अचानक मेरे मुख से निकल गया, “पी० एस० टंडन एंड ब्रादर्स के यहाँ पसन्द कर आये हैं।”

“अरे साहब, उसने क्या वैराइटी दिखाई होगी, हम तो स्पेस्लाइज्ड हैं लखनऊ की साड़ियों में बस थोड़ा देखने का कष्ट करें।”

“अब तो देर हो रही है, किसी समय दिन में आयेंगे देखने के लिए?”

“आप कहाँ ठहरे हुए हैं, हमारा आदमी वहीं दिखा आयेगा आपको?”

पूछा छुड़ाने के अभिप्रायः से कहा, “ठहरे हुए तो इंडिया होटल में हैं, मगर अधिकांश समय घूमने में, ही निकल जाता है, इसलिए कष्ट न करें, यकीन रखिए साड़ियाँ आप ही के यहाँ से लेंगे।”

“धन्यवाद।”

बाहर आकर स्नेह ने कहा, “बड़ा ही कुशल व्यापारी है, ऐसा इंसान बातों की ही कमाई खाता है।”

कोट पहन कर वह और भी सुन्दर लग रही थी। गत जाइों में भी मैंने उसे शाल में ही देखा था, कोट पहनती कभी दृष्टिगत नहीं हुई। वैसे तो उसका फिगर और फिचर दोनों ही बढ़िया थे। अब तक फ्लेट पर उसके समान सुन्दरी मुझे दृष्टिगत नहीं हुई थी। यही कारण था कि लोगों की दृष्टि उस पर उठा करती थी, उसमें मेरे प्रति द्वेष भावना अवश्य होगी, ऐसा स्वाभाविक ही है। जिस समय उसने कुशल व्यापारी

की बात कही थी, उस समय मैं उसके सौन्दर्य का रसपात कर रहा था, उसी अवस्था में उत्तर दिया, “दुकानदारी इसी को कहते हैं जो भाये उसी की जेब सफ़ा हो।”

इस समय उसे देखते हुए मेरे नेत्र तृप्त नहीं हो रहे थे। आखिर चोरी पकड़ी ही गई, पूछ बैठी, “ऐसे क्या देख रहे हो?”

“तुम्हारे सौन्दर्य को-।”

उसने हँस कर उत्तर दिया, “छी ! कलंकिनी को ऐसे नहीं देखा करते।”

“कलंक से सौन्दर्य और भी...”

“बातों में तुम्हारे से कोई नहीं जीत सकता जीवन।” उसने बात को बीच में ही काटते हुए कहा।

“मैं भूठ नहीं कहता ! कमल शौवाल में ही लिपटा रहने पर भी सुन्दर दृष्टि-गत होता है। हिमकर का बिम्ब मलिन होने पर भी प्रकाश बिखेरता है। वलकलों से भी विभूषित कोमलांगी अधिक सुन्दर लगती है। वास्तविकता तो यह है कि ।”

“अब इस भाषण को बन्द भी कीजिए, मामू की दूकान आ गई है...”

“ओह...” मैंने देखा कि इन्तज़ारी में कितने ही लोग बाहर खड़े हुए थे ? हम भी उन्हीं में शामिल हो गये। लगभग दस मिनट के उपरांत स्थान मिला। खाने से निवृत्त होकर हम मिष्टान गृह से कुछ स्वीटस और नमकीन लेकर माल की ओर बढ़े तो साढ़े नौ बज चुके थे। प्लेट पर पहुँचते पहुँचते पन्द्रह मिनट और लग गये। इस समय पहले जैसी चहल पहल नहीं रही थी। अधिकांश बेंच भी खाली पड़े थे। दो चार कपल अवश्य ‘शैडीयो’ में बैठे चाय पी रहे थे और कुछ मनचले तराना छेड़ते हुए इधर-उधर घूम रहे थे। ‘शैडीयो’ के समीप पहुँच कर स्नेह ने कहा, “अब पैदल नहीं चला जाता, साईकिल रिकशा कर लीजिए खसके लिए राह देखनी पड़ी ; पर अधिक देर नहीं, शीघ्र ही कई रिकशा

तल्लीताल की ओर से आते हुए दिखाई दिए ।

कुछ ही मिनटों में रिक्शा वाले ने होटल पर पहुँचा दिया । स्नेह को थकान अधिक महसूस हुई थी । कमरे का द्वार खोल, स्वीच ऑन कर वह शैया पर लेट गई । कुछ देर के बाद वह उठी, बिस्तर ठीक कर नाइट ड्रेस पहनने के लिए बाथरूम की ओर बढ़ गई । वहाँ से लौटी तो उसकी आँखें खुमारी से भरी हुई थीं; परन्तु हृदय की धड़कनों की गति कुछ और ही कह रही थी । स्वीच ऑफ कर बिस्तर पर लेट गये । आज की रात और दिन की अपेक्षा विशेष ठंडी थी और इसके साथ ही वर्षा की सम्भावना भी । वह मेरे जीवन की सब से पहली सुखद यामिनी थी, जबकि स्नेह ने आत्म समर्पण किया था ।

उसी समय मैंने पूछा था, “स्नेह ! जानती हो नारी जीवन की सब से बड़ी खुशी क्या है ?”

“विवाह कर लेना ।”

“बस ।”

“हाँ, नारी यौवन काल से इसके लिए बड़ी उत्सुक हो जाती है, और वही उत्सुकता उसके जीवन की सब से बड़ी खुशी बन जाती है ।”

“पर ऐसी उत्सुकता में निराशा ही हाथ लगती है ।”

“तो फिर ।”

“नारी के जीवन की सब से बड़ी खुशी है कोई उसे चाहे ?”

“और नारी के लिए विवाह ।”

“केवल त्याग है ।”

“त्याग से ही आनन्द की प्राप्ति होती है ।”

“सम्भव है ।”

“विवाह किन के लिए अच्छा है ।”

“लोहे और चुम्बक के समान एक दूसरे की ओर आकर्षित होने वाले प्रेमियों के लिए ।”

“क्यों ?”

“उनको एकत्रित कर सामाजिक बंधनों में बाँधने वाला ही विवाह है।”

“क्या प्रेम रहित विवाह विवाह नहीं?”

“नहीं, वह काल कोठरी है जहाँ दो प्राणियों की हत्या हो जाती है।”

“प्रेम विवाह का क्या है?”

“सूर्योदय।”

“और विवाह।”

“सूर्यास्त।”

—“और भी स्पष्ट कीजिए।”

“विवाह का आदर्श तो केवल शरीर के द्वारा आध्यात्मिक मिलन है और मानवीय प्रेम देवी अथवा विश्व प्रेम की सीढ़ी है।”

“दोनों के मिलन से जीवन में आलौकिक आनन्द की प्राप्ति होती है क्या?”

“हाँ, अब पहुँची हो मेरे विचारों को, तभी तो मैंने विवाह करने में जल्दी की।”

“मगर जल्दबाजी से की जाने वाली शादी से हमेशा पछताना पड़ता है और बहुदा खुशियों के गढ़े रज एवं गम से भरने होते हैं।”

“सर वाल्टर स्कॉट के जीवन में ऐसा हुआ होगा, मेरे में नहीं।”

रात्रि की नीरवता में हमारा हास्य गूँज उठा।

वैसा ही हास्य मेरे कानों में पड़ा। अतीत के चल चित्र लुप्त हो गये। गाड़ी तीव्र गति से गन्तव्य स्थान की ओर बढ़ रही थी। लगभग कम्पार्टमेंट के यात्री सो रहे थे, कुछ ऊँच रहे थे, इसी ध्वनि ने सब को चौंका दिया। आँखें केन्द्रित हो गईं उस नारी पर, जो पिछले स्टेशन से चढ़ आई थी इस कम्पार्टमेंट में, दुःखों की भट्टी में झुलसने के कारण वह अपना दिमाग खो चुकी थी। इस अवस्था में उसे अपने तन की परवाह नहीं थी। शायद ही कहीं से उसका वस्त्र ठीक हो।

जिन विकारों ने उसे जलाया था, रात्रि की नीरवता में, होश खोकर उनकी स्मृति में हँस रही थी वह। झुंझलाहट भरे चेहरे उसे घूर रहे थे, उसने उनकी नींद हराम कर दी थी। किन्तु मैंने उसकी ओर वैसी दृष्टि से नहीं देखा, जबकि उसने अतीत के सुखद स्वप्न को तोड़ दिया था। बल्कि मेरे हृदय में उसके प्रति सहानुभूति सजग हुई; क्योंकि हम दोनों एक ही नौका के राही थे और एक ही जीवन सागर को पार करने में प्रयत्नशील। अन्तर था केवल इतना ही वह होश खो चुकी थी और मैं होश में था।

तभी किसी यात्री ने कहा, “पगली कहीं की, नींद भी हराम कर दी।”

बस मधुमक्खियों के छत्ते में हाथ डालने की देर थी। उस पगली ने उसके खानदान को जी भर कर कोसा। लोगों को आनन्द आ रहा था और वे महाशय मुँह ढक कर पड़ गये। अगला स्टेशन आया, अँधेरे में नाम न पढ़ सका उसका, वह पगली स्वयं ही उतर गई। फिर गाड़ी ने घिसटना शुरू किया और कुछ ही मिनटों में रफ़्तार पकड़ गई, ठीक मेरे जीवन की तरह। जंगल की ठंडी समीर कम्पित करने लगी मुझे। शरद् ऋतु में रात्रि का समय कितना भयावह और नीरव होता है? वह इस यात्रा में देखने को मिला। तभी सामने की सीट पर लेटे हुए एक व्यक्ति ने कहा, “आप को जाड़ा नहीं लगता क्या, खिड़की बंद कर दीजिए?” उस व्यक्ति को ध्यान से देखा। वह ऊपर से नीचे तक गर्म कपड़ों में लदा पड़ा था। इस पर भी जाड़े की दुहाई। एक ओर यह इंसान है दूसरी ओर वह पगली। दोनों का एक ही धर्म है; किन्तु प्रकृति में जमीन आसमान का अन्तर। वाह रे तेरी लीला...। अधिक न सोच सका मैं, खिड़की बंद कर दी और फिर अतीत की झाँकी को चित्रित करने के लिये स्मृति की तूलिका को पकड़ा।

सब से पहले चित्र में स्नेह मुझे उठाकर पूछ रही थी, “आज कहीं नहीं चलोगे क्या? देखिये, मौसम खला है आज।”

मैंने खिड़की में से आसमान की ओर देखा। वह बिल्कुल साफ था और धूप निकल आई थी। मैंने कहा, “मौसम तो चाइना पीक का है।”

“चाइना पीक ! कितनी दूर है यहाँ से ”

“साढ़े तीन मील की चढ़ाई है, वह स्थान समुद्रतल से ४७०० फीट ऊँचा है।”

“कोई सवारी...?”

“घोड़ों पर चलेगे।”

“मैंने तो कभी छुड़ सवारी नहीं की, कहीं गिर गई तो लेने के देने पड़ जायेंगे।”

“यहाँ के घोड़े सीधे और सधे हुए होते हैं, गिरने की चिंता मत करो, बस तैयार हो जाओ।”

“और आप ।”

“मैं भी पन्द्रह मिनट में शौचादि से निवृत्त होकर तैयार हो जाता हूँ।”

इसके बाद प्रातराश कर, केमरा लेकर, मल्लीताल में नगरपालिका कार्यालय के पास पहुँचे। दस रुपये में दो घोड़े आने जाने के लिये मिल गये। मैं छुड़सवारी कई बार कर चुका था। स्नेह के लिए पहला अवसर था। इसलिए घोड़े का मालिक इब्राहिम घोड़े के रोकने, मोड़ने और चलाने के विषय में कुछ हिदायतें देकर उसके साथ हो लिया। मार्ग में चढ़ाई पर बड़े भयानक मोड़ आये, तनिक भी घोड़ा बे काबू होने पर मौत को आवाहन दे सकता था। ऐसी अवस्था में नया सवार और वह भी नारी, हृदय में डर का उद्गम होना स्वाभाविक ही है। ऐसे ही एक मोड़ पर पहुँच कर उसने कहा, “कितने भयानक मोड़ है जीवन ?”

वाकई काफी भयानक था वह मोड़, वहाँ से गिरने पर किसी भी ग्रंथ का पता नहीं चल सकता था। मैंने उस ओर देखकर कहा, “जीवन के मोड़ तो इससे भी अधिक भयानक होते हैं स्नेह।” वह मेरी ओर देख कर

मुसकराई और इब्राहीम से बोली, “आप इसे पकड़ कर ले चलिए।” उसका सीधा सादा उत्तर था, “घबरायें नहीं बहन, घोड़ा अपने रास्ते पर चला जायेगा। पौन घंटे की यात्रा के बाद हम लोग चाइना पीक पहुँच गये। पिकनिक के लिए स्पॉट अच्छा था और भी कितने ही घोड़े अपनी सवारियों को लेकर हमारे से पूर्व पहुँचे हुए थे? चाय और गर्म-गर्म पकौड़ियों की वहाँ पर व्यवस्था थी। थकान को दूर करने के लिए मसाला काफी था। चाय के साथ गर्म-गर्म पकौड़ियों की कई प्लेटें साफ कीं। इसके बाद घोड़े पर एक दूसरे के फोटो लिए गये। इसके उपरांत एक ओर को संकेत कर कहा इब्राहीम ने, “देखिए बहन, वह सामने चीन की दीवार है।”

हमें विश्वास करना पड़ा उसके कथन पर, इसके उपरांत वहाँ से नैनी लेक को देखा, वह बहुत छोटी सी दृष्टिगत हो रही थी। चारों ओर हरियाली-हरियाली ही थी। बाँझ, देवदार और चीड़ के लम्बे-लम्बे वृक्ष सतत प्रहरियों के समान चारों ओर खड़े हुए थे। शीतल समीर उनके स्पर्श से अनोखी सी कंपन उत्पन्न कर रहा था। वहाँ पर खिली घूप भी बड़ी प्यारी लग रही थी। वहीं पर सरकारी आवास गृह बना हुआ था। मैंने सुन रखा था कि यहाँ से सूर्योदय और सूर्यास्त देखने वाला है, तो स्नेह से पूछा, “आज की रात यहीं ठहरा जाये।”

“इस सुनसान जगह में, ना बाबा! माल की चहल-पहल मुझ से नहीं छोड़ी जा सकती, चलिये, अब नीचे उतरें।”

माल की चहल-पहल का तो केवल बहाना था, उसे डर था जंगली जानवर का। यह जानते हुए मैंने उसे ठहरने के लिए विवश नहीं किया बल्कि अपने घोड़े पर बैठ कर नीचे उतरने के लिए आगे की ओर बढ़ गया। इब्राहीम ने यह कह कर कि बहन डलान है, लगाम तनिक ढीली रखियेगा और अपने आपको पीछे की ओर, स्नेह को घोड़े पर चढ़ा दिया। हमारे से आगे कितने ही घोड़ों को दौड़ाते हुए जा रहे थे, इच्छा हुई कि मैं भी दौड़ाऊँ, पर स्नेह को अकेला छोड़ना भी अच्छा नहीं

समझा। उतरते हुये मार्ग में एक सज्जन से परिचय हुआ। वे बहुत ही मिलनसार व्यक्ति थे। उनका नाम था मि० जौहरी। दिल्ली में किमी विद्यालय के मुख्याध्यापक थे? स्नेह को भी उनकी आदतें पसन्द आईं और नीचे उतरते-उतरते यह परिचय घनिष्टता में बदल गया। इस कारण 'फ्लेटीज' में चाय के निमन्त्रण को ठुकरा न सके। उससे निवृत्त होकर स्नेह ने डिनर पर आमंत्रित किया और हम लोग उनसे विदा लेकर होटल लौट आये।

यहाँ आकर मैं आनन्द को बिल्कुल भूल-सा ही गया था। आज मि० जौहरी की आत्मीयता और सहनशीलता ने मुझे आनन्द की याद दिला दी। उसका स्वभाव उनसे काफी मिलता जुलता था। उसी समय बैठकर मैंने उसे पत्र लिखा।

लंच के उपरांत विश्राम के लिये लेट गये। संध्या समय, चाय के लिये जब उठे तो शरीर काफी से ज्यादा थका सा प्रतीत होता था, कमर का नीचे का भाग दर्द कर रहा था। गरम-गरम चाय पीने से कुछ राहत मिली; पर इतना अवश्य हुआ कि हम घूमने के लिये नहीं जा सके उस संध्या को। वहीं होटल के सामने लॉन में कुर्सियाँ डालकर नौका विहार का दृश्य देखते रहे। ठीक आठ बजे मि० जौहरी आ गये। लगभग आठ घंटे के उपरांत हमने डिनर दिया। उस बीच हास-परिहास के अतिरिक्त विशेष बातचीत न हो सकी। जब हम लोग डिनर हॉल से निकल कर अपने कमरे में पहुँचे तो स्नेह को इज्जी चेयर पर बैठता देख, मि० जौहरी ने कहा, "सिस्टर! अब घूमने नहीं चलोगी।"

"चाइना पीक ने घूमने की ताकत ही नहीं छोड़ी शरीर में।"

"वड़ी दुर्बल हो ...।"

"दुर्बलता ही नारी का आभूषण है।"

"ऐसा आभूषण किस काम का जो सरकंडे के समान हवा के हर झोके पर झुक जाये।"

मि० जौहरी के इस कथन पर मैं खिलखिला कर हँस पड़ा और

स्नेह लजा गई ।

टॉपिक को बदलते हुए मि० जौहरी ने पूछा, “अब तक क्या क्या देखा आप लोगों ने ?”

“पहले बैठें तो सही ।”

“बैठना ही है तो लॉन में क्यों न बैठा जाये ?” मैंने कहा ।

“ठीक है, चलते फिरते फूलों की महक भी सूँघने को मिलेगी,” मि० जौहरी ने कहा ।

“क्या आप भी भँवरे हैं ? कितना सुन्दर कटाक्ष किया था स्नेह ने, पर मि० जौहरी चूकने वाले नहीं थे, तत्काल बोल उठे, “क्या उसके लिये कोई लायसेंस लेना पड़ता है ?”

और मेरे सुख से निकल गया, “क्या खूब पड़ा है नहले पर बहला ?”

इसके उपरांत बैठक लॉन में जमी ।

स्नेह ने पहल की । क्या आगे के प्रोग्राम में हमारी कम्पनी स्वीकार करेंगे मि० जौहरी ?”

“मि० जीवन को कोई ऐतराज नहीं होगा तो...।”

“मुझे...मुझे भला क्यों ऐतराज होने लगा ?”

“मैं यहाँ तीन दिन और हूँ सिस्टर ।”

“फिर क्या लौट जायेंगे वापस ?”

“हाँ, किसी विशेष कार्यवश लौटना पड़ रहा है ? आप लोग तो अभी कुछ दिन ठहरेंगे यहाँ ।”

“बिचार तो ऐसा ही है,” मैंने उत्तर दिया ।

“कल स्नो व्यू और लड़िया कांटा चलिए । अगले दो दिनों में टिफन टॉप और लेण्डस एंड,” मि० जौहरी ने कहा ।

“सवारी का इन्तज़ाम करना चाहिए या पैदल ही,” मैंने पूछा ।

मि० जौहरी के उत्तर देने से पूर्व ही स्नेह बोल उठी, “पैदल ही ठीक रहेगा ।”

मैं उसकी कमजोरी पर मुसकराया ।

स्नेह पूछ उठी, “स्नो व्यू के लिये कल किस समय चलना चाहिए ?”

“सूर्योदय से पूर्व ।”

“और लौटेंगे कब तक ?”

“सूर्यास्त से पूर्व ।”

“लंच का क्या होगा ?”

“इसका होटल वाले प्रोवीजन कर देंगे और दूध की बोतलों में स्नोराई डेरी फार्म से लेता आऊंगा ।”

“बस...।”

मि० जोहरी कुछ सोच कर बोले, “शेकले की पेस्ट्रियाँ तो आप खा ही चुके होंगे ।”

“रोज जाने की सोचते हैं शेकले तक मगर...।”

“आप तकलीफ न करें, मैं अभी जाता हुआ लेता आऊंगा और सिस्टर को कल यहाँ की सबसे बढ़िया चीज़ खाने को मिलेगी ।”

“स्टेण्डर्ड से कौन सी बढ़िया होगी ?”

“अरे साहब, स्टेण्डर्ड क्या चीज़ है शेकले के आगे ? खाओगे तो तारीफ ही निकलेगी मुँह से ।” उसी क्षण माल पर जाती हुई कुत्ते वाली महिला की ओर संकेत कर बोले मि० जोहरी, “सिस्टर देखा था उस महिला को, प्राकृतिक सौन्दर्य पर मुलम्मा चढ़ाये हुए थी, पता नहीं आजकल की महिलाओं को बहुरूपिया बनने का कब से शौक चरिया ?”

स्नेह ने खिलखिलाते हुए उत्तर दिया, “लिपिस्टिक पावडर ही तो आजकल सौन्दर्य के प्रसाधन हैं । इन्हीं से तो सौंदर्य को स्थिर रखा जा सकता है ।”

मि० जोहरी ने मुसकराते हुए उत्तर दिया, “यही तो भूल है सिस्टर । सौंदर्य को स्थिर रखने के लिये हर्ष के अतिरिक्त और किसी भी वस्तु की आवश्यकता नहीं ?”

“यह लोगों के लिये ही है या अपने पर भी चरितार्थ होती है।”

“अभी तक तो लोगों के लिये ही है सिस्टर, सीट रिजर्व कराने पर लागू होगी।”

“भविष्य की बातें कौन जान सकता है भाई साहब ? पता नहीं ऊँट किस करवट बैठे ?”

“ऊँट की कल अपने हाथ में है सिस्टर, इसलिये निश्चित हूँ,”
मि० जोहरी ने उठते हुए कहा।

“आप अभी से जा रहे हैं, कुछ देर बैठिए ना।”

“नहीं सिस्टर, दस बजने वाले हैं, फिर शेरूले तक भी जाना है।
अच्छा, नमस्ते, कल मिलेंगे।”

मि० जोहरी चले गये और मैं उन्हें छोड़ने के लिये द्वार तक गया।
लौटकर आया तो स्नेह बिस्तर ठीक कर चुकी थी, बोली, “मि०
जोहरी का स्वभाव मुझे बहुत पसन्द आया है।”

मैंने प्रसन्न बदन उत्तर दिया, “घनिष्टता की ग्रन्थि प्रकृति ही
जुड़वाती है।”

“सच।”

“हाँ ! तुम्हारी प्रकृति ने ही सबसे पहले मुझे आकर्षित
किया था।”

“मगर मैं....।”

“स्पष्ट कहो ! कहते कहते रुक क्यों गई ?”

“सुन्दर आकृति और प्रतिभा ने।”

मैंने हँस कर उत्तर दिया, “सौन्दर्य तो फूल में देखा जाता है काटों
में नहीं।

“फिर तुम्हारा चयन फीका रहा।”

“कैसे ?”

“सौन्दर्य और प्रतिभा दोनों ही नश्वर हैं ?”

“प्रकृति भी तो परिवर्तनशील है, खैर छोड़िए, जो होना था सो ही

गया, बिध गया सो मोती, रह गया सो पत्थर, अब बत्ती बुझाइये और निन्द्रा लोक में पहुँच जाइये ।”

“आज मुझे मि० शोपेन हेवर का एक कथन याद आ रहा है, सुनोगी उसे तुम ।”

“अवश्य, मगर उसे व्यवहार में लाना होगा ।”
 मैं स्वीकृति स्वरूप बत्ती को बुझाता हुआ बोला, “निद्रा सुखद है, मृत्यु उससे भी अच्छी है और सबसे अच्छी बात है जन्म न लेना ।”

“फिर क्यों लिया था जन्म ?”

“यह मेरा दोष नहीं, मां बाप का है ।”

“और प्रेम का दोष ।”

“हृदय का है ।”

“तुम्हारा कोई दोष नहीं ।”

“है, केवल एक ।”

“क्या ?”

“तुम्हारे प्यार को छलना ।”

“क्या छलिया हो ?”

“बस ऐसा ही समझ लो ।”

“मेरा विश्वास तुम्हारे प्रति दृढ़तर होता जा रहा है, वह कहता है तुम मेरे हो, जन्म जन्मांतर तक मेरे रहोगे । वास्तव में यही विश्वास मेरे प्रेम को सजीव एवं सतृष्ण रखने के लिए बहुत है, इसी के बल पर जीवन काट दूंगी । जिस दिन इस विश्वास की जड़ खोखली हो जायेगी, उसी दिन अपना अंत कर दूंगी जीवन ।”

“तुम्हारे विश्वास की जड़ें कभी भी खोखली नहीं होंगी स्नेह, इससे निश्चिन्त रहो ।”

इसके बाद वह रात सुखद रूप से कटी । अगले दिन होटल के द्वारा मिले हुए भाँति-भाँति के स्लाइसों को लेकर छोड़ी ग्री के पास पहुँचे । मि० जोहरी कंधे पर मिलिट्री का थैला लटकाये हमारी प्रतीक्षा में थे ।

स्नो व्यू पहुंचने के लिए स्नेह ने हमें शाटं कट नहीं करने दिया, सड़क द्वारा ही जाना पड़ा। मार्ग में एक सुन्दर सी इमारत को देख कर स्नेह ने प्रश्न किया, “यह क्या है ?” मैं भी उससे सम्भवतः परिचित नहीं था। अतः मि० जौहरी ने उत्तर दिया, “बिरला विद्या मंदिर, बड़ी अच्छी संस्था है बच्चों के लिए।”

स्नेह ने सुना भर, दूसरा प्रश्न नहीं किया, कदाचित् वह किसी नई दुनिया में खोई हुई आगे बढ़ रही थी। वह कौन सी दुनिया है, हम दोनों न जान सके। लगभग आध घंटे के बाद हम स्नो व्यू पहुँचे। वह स्पॉट विशेष ऊँचा नहीं था। थकान को दूर करने के लिए चाय लेनी आवश्यक थी वहाँ, दूसरे लड़िया काँटा भी जाना था, वहाँ किसी चीज के मिलने की सम्भावना नहीं थी। वहीं बैच पर बैठ कर चाय के साथ शेकले की पेस्ट्रियां उड़ाई गईं। वास्तव में मि० जौहरी का कथन उनके विषय में यथार्थ ही था। स्नेह ने भी उन्हें खूब चाव से खाया। इसके बाद उस स्थान को भली भाँति देखा गया। स्नो तो हमें दिखाई नहीं दी; क्योंकि आसमान साफ नहीं था, बादल छाये हुए थे, उनकी वजह से घाटी की हरियाली भी हम लोग निहार नहीं सकते थे।

लगभग ग्यारह बजे हम लोग लड़िया काँटा की ओर चले। यह रास्ता साफ सुथरा नहीं था, सकरी सी पगडंडी पर काँटे वाले पौदों से बच कर चलना पड़ रहा था। सहसा स्नेह की साड़ी का पल्लू उलझ गया, वह गिरते-गिरते बची और उसके मुख से निकला, “हुई मँया।”

मैंने उसके पल्लू को निकालते हुए कहा, “तुम उलझाती रहो, मैं निकालता रहूँ, यही तो जीवन है।”

उसने अनोखी चितवन से मेरी ओर निहारा।

मैंने देखा, उसकी खंजन सी आँखों में से दूध के उफ़ान के समान प्रेमरस उमड़ा पड़ रहा था। मि० जौहरी हमारे से काफी आगे थे, उनकी आवाज सुनाई दी, “स्पॉट आ गया है सिस्टर, केवल दो ही मोड़ रह गये हैं।”

“जल्दी चलिए, कहीं बारिश ने घेर लिया तो....।”

मैंने देखा, बादल हमारे समीप से गुजरते प्रतीत हो रहे थे। चाल तेज की और कुछ ही मिनटों में लड़िया काँटा पर पहुँच गए। मि० जोहरी हमारी प्रतीक्षा में थे, हंसते हुए बोले, “पसन्द आया यह स्थान सिस्टर।”

स्नेह ने समीप बैठते हुए कहा, “चाईना पीक से अच्छा नहीं है भाई साहब।”

तभी मूसलाधार वर्षा होने लगी, ऐसा लगता था कि संध्या तक खुलेगा नहीं। हम लोगों ने निश्चिन्त होकर दूध के साथ स्लाइस लिए और तत्पश्चात् तीन घंटे तक रमी चलती रही। तीन बजे के लगभग वर्षा रुक गई, धूप निकल आई, हमने प्रकृति के सौन्दर्य को निहारा, स्नान कर वह धूप में अपने केशों को सुखा रही थी। चार बजे के करीब हम लोग हर्ष की तरंगों में डूबे हुए नीचे उतरने लगे। वर्षा के कारण रास्ता कुछ स्लीपरी हो गया था। इसलिए फ्लेट पर पहुँचते-पहुँचते छः बज गए। आज वहाँ पर बैण्ड था, फरमाइशों का प्रोग्राम नहीं था। फिर भी घूमने के लिए आए हुए लोग वहाँ चहल कदमी कर रहे थे, कुछ चना जोर गरम खा रहे थे। कुछ देशी बादामों को छील-छील कर खा रहे थे और कुछ स्केटिंग रिंग की ओर बढ़े जा रहे थे। मेरी इच्छा इस समय कुछ देर नौका विहार करने की थी और स्नेह उसी क्षण इन रम्य स्थलों के रंगीन चित्र कला मंदिर से क्रय करने के लिए उत्सुक थी। उसी की इच्छा पूरी हुई। एलबम और चित्र खरीद लिए गये। इसके बाद मि० जोहरी के साथ जाना पड़ा; क्योंकि वे आज डिनर के लिए बाध्य कर रहे थे। वे हर्मिटेज कॉटेज में ठहरे हुए थे। वह स्थान पास भी नहीं था और नीचे भी नहीं, बड़ी मुश्किल से हम सिविल होटल के बागीचे के पास पहुँच सके। बागीचा बहुत ही सुन्दर था। भाँति भाँति के भ्रंशेजी फूल खिले हुए थे। थकान के कारण मि० जोहरी के प्रावास स्थान तक पहुँचना कठिन सा लग रहा था। सो स्नेह ने कुछ

झिझकते हुए कहा, “आप हो आइये भाई साहब, हम तब तक इस बेंच पर बैठते हैं।”

“मैं ही जाकर क्या करूँगा सिस्टर ?” मि० जोहरी ने कहा और हमारे साथ ही बेंच पर बैठ गये। हमारे सम्मुख ही सैक्रेट्रियट भवन था। इसके बाद कितने ही जोड़े हमारे सामने से गुजरे, उनके साथ किसी न किसी अच्छी नस्ल का कुत्ता अवश्य था ? प्लेट और माल पर भी उनके साथ काफी लोगों के पास कुत्ते देखे थे। स्नेह अपनी जिज्ञासा को न रोक सकी, पूछ बैठी, “यहाँ पर कुत्ते बहुत होते हैं क्या ?”

“हाँ, एलसेशन और पाइनियर किस्म के कुत्ते बहुत पाये जाते हैं ?” मैंने उत्तर दिया।

उसी क्षण एक जोड़ा सामने से निकल गया। स्नेह को देख कर नवयुवती ने कहा,

“हेलो।”

स्नेह ने भी संक्षिप्त सा उत्तर दिया, “हेलो।”

मि० जोहरी पूछ उठे, “क्या आप जानती हैं इन्हें सिस्टर ?”

“हाँ, यह सरोज मल्होत्रा हैं, मेरे साथ पढ़ा करती थीं। मगर ये सरदार जी कौन हैं इनके साथ ?”

“क्यों, कोई शक है क्या, उसका पति होगा ?”

“मगर वह तो सरदारों को अच्छा नहीं समझा करती थी, फिर शादी कैसे करली ?”

“इस लिए तो कहता हूँ कि नारी प्रकृति बदलते देर नहीं लगती। सरदार जी के पैसे का जादू चढ़ गया होगा तुम्हारी सखी पर।”

“ऐसी बात नहीं है भाई साहब, सिस्टर का शक कुछ हद तक ठीक ही है।”

“आपका मतलब है कि...”

“जी हाँ, ये मेरे बराबर के कमरे में ही ठहरे हुए हैं, कल रात इन की नोक भोंक का कुछ भाग अवश्य सुनने को मिला है।”

“अच्छा ।”

“हाँ, सरदार जी कह रहे थे । दूर का सुनहरा नजारा पास आकर रेत का मैदान हो जाता है । तुम मेरे लिए आदर्श हो सरोज ! तुम्हारे प्यार की खुशी मैं कल्पना द्वारा ही लेना चाहता हूँ ।”

“ऐसा मत कहिये, आप के लिए तो मैं ।” सिसकियाँ सुनाई दीं ।

“मैंने बहुत सोचा सरोज और इसी निश्चय पर पहुँचा हूँ कि तुम्हें पाकर मेरी जिन्दगी नीरस हो जायेगी ।”

“पहले क्यों नहीं सोचा था ? काश ! यहाँ आने से पूर्व जान जाती सब कुछ ।”

“मैंने तुम्हारे से स्पष्ट कह दिया था कि प्रेम की ग्रन्थि पर विवाह का बंधन नहीं पड़ने दूंगा । तुम्हीं सोचो सरोज ! आत्मिक मिलाप के लिए किसी प्रकार का विघ्न नहीं होता; किन्तु विवाह जैसे सामाजिक संस्कारों के लिए अपने स्वजन और समाज के नियमों की स्वीकृति अनिवार्य है । वह स्वीकृति दोनों ओर से मिलती असम्भव है ।”

रुंधे हुए कंठ से ध्वनि सुनाई दी थी, वह ध्वनि सरोज की ही थी, “दलजीत ! औरत या तो प्यार करती है या घृणा, उसे इसके अतिरिक्त कोई बीच का रास्ता नहीं आता ।”

“क्रोध को थूक कर शांति से सोचो सरोज; क्योंकि यह समझदारी को घर से निकाल देता है । इसके बाद कुछ देर तक सिसकियाँ सुनाई देती रहीं; फिर वह भी बंद हो गई कदाचित् वे लोग सो गये थे । फिर मैं भी सो गया ।”

स्नेह ने मेरी ओर देखकर कहा, “पुरुषों के वायदों पर कभी विश्वास नहीं करना चाहिए ?”

मैंने उत्तर दिया, “क्या यह स्त्रियों पर चरितार्थ नहीं होती ?”

“नहीं, स्त्रियाँ वायदा नहीं करती; किन्तु पुरुषों के लिए अपना सब कुछ व्योक्तावर कर देती है । पुरुष वायदे बहुत करते हैं; किन्तु समय पड़ने पर मुकर जाते हैं ?”

“सुन लिया भाई साहब आपने, कितनी सस्त चोट की है पुरुषों पर ? अब चलिए, फ्लेटीज में डिनर लिया जाये ।”

फ्लेटीज में पहुँचते पहुँचते साढ़े आठ बज गये । डिनर की टेबुलें एक ओर को सजी हुई थीं । नम्बर पाँच पर हम लोग आकर बैठ गये । मि० जोहरी वहाँ के डिनर से पूर्व परिचित थे, उन्होंने जो डिश विशेष समझी उनका आर्डर दिया ।

सर्विस बड़ी अच्छी हुई और पाँच मिनट के अन्दर अन्दर सब चीजें हमारी टेबुल पर आ गईं । डिशिंग सभी अच्छी थी; खाना काफी खाया गया । उसी बीच मि० जोहरी ने स्नेह को सम्बोधित कर धीमे स्वर में कहा, “सिस्टर ! सामने देखिए, सुलह हो गई मालूम देती है । स्नेह ने छुपी दृष्टि से देखा, सरोज सरदार जी के साथ बंठी चाय पी रही थी । नज़रें टकरा गई और सरोज ने मुँह फेर लिया ।

इसके बाद हम मि० जोहरी का धन्यवाद कर रिक्शा में बैठ कर होटल लौट आये । थकान काफी थी लेटते ही नींद आ गई ।

अगले दो दिन भी मि० जोहरी के साथ बहुत अच्छे कटे । टीफन टॉप और लेंडस एंड की पिकनिक बहुत ही सुन्दर रही और लौटते हुए पोप रोड के किनारे ऐसी बूटी का परिचय कराया जो स्नेक कहलाती थी और उसके पौदे की आकृति भी साँप के फन से मिलती हुई थी । स्नेह ने उसे तोड़ने की कोशिश की । मि० जोहरी ने रोकते हुए कहा, “इसे न तोड़िए सिस्टर, यह बिषैला पौदा है, इसके खाते ही जीव परलोक गामी हो जाता है । तीसरे दिन मि० जोहरी को जाना था, जाने से पूर्व कुछ क्षणों के लिए होटल पर आये थे, बस का समय हो गया था, बिना चाय के ही दिल्ली का ग्रामंत्रण देकर चले गये । उस दिन और किसी स्पॉट पर न जा सके ? सारा दिन आराम किया और संध्या समय नौका विहार । वहाँ से लौटते हुए चाट कॉरनर पर मि० एंड मिसिज भटनागर से भेंट हो गई । वे स्नेह की परिचिता थीं । उनके ही साथ नैनी देवी के दर्शन किए । बातों ही बातों में उनसे पता चला कि वे कल भंडाली

सेनिटोरियम, भीमताल और नौकुञ्छिया ताल देखने जा रहे हैं। हम लोग भी उनकी कम्पनी करने के लिए तैयार हो गये। अगले दिन लंच के बाद हम लोग इन स्पॉट्स को देखने के लिए चले। इस ट्रिप का आयोजन मि० भटनागर द्वारा किया गया था। सबसे पहले नौ कुञ्छिया ताल देखा। वह आबादी से दूर शांत वातावरण में था और उसके नौ किनारे थे। मछलियों के शिकार के लिये वहाँ विशेष प्रबन्ध था। वहाँ से लौटते हुए भीमताल उतरे। यह ताल काफी बड़ा था। इसके बीच में बैठने के लिए बहुत सुन्दर स्थान बना हुआ था। जाना पड़ता था नौका द्वारा। वहाँ पर कई ग्रुप फोटो खीचे गये। डाक बंगले पर चाय का प्रबन्ध किया गया था। उसमें लगभग एक घंटे की देरी थी। हम लोग उस समय में भीमताल की सैर के लिए निकल गये। नौका में हम पाँच प्राणी थे। उक्त स्थान पर पहुँच कर रमी जमी और पारस्परिक परिचय भी हुआ। हमारे बीच पाँचवे सज्जन थे मि० विश्वास। एक कुशल इंजीनियर और प्रशिक्षण केन्द्र के अध्यक्ष होने के नाते मेरी अभिरुचि उनकी ओर बढ़ी। इसके अलावा गौरवर्ण, गोल चेहरा और मृदु स्वभाव दूसरों को अपनी ओर शीघ्र ही आकर्षित कर लेता था। वे इस समय मंडी रियासत में कार्य कर रहे थे। मुझे भविष्य में उनसे सहायता की आशा थी। इसलिये मैंने उनसे घनिष्टता बढ़ाने का निश्चय कर लिया। यहाँ तक कि नोट बुकों में एक दूसरे का एड्रेस भी लिखा गया।

पाँच बजे हम लोग डाक बंगले पर चाय के लिए एकत्रित हुए। इसके बाद सेनिटोरियम देखकर वापस साढ़े सात बजे नेनीताल पहुँचे। मैंने मि० एंड मिसिज़ भटनागर और मि० विश्वास को डिनर पर आमंत्रित किया। कुछ देर आना कानी के उपरांत वे लोग तैयार हो गये। डिनर पर विशेष बातचीतें मि० विश्वास से न हो सकीं। अगले दिन लंच का निमन्त्रण मि० विश्वास की ओर से मिला। वे ग्रांड होटल में ठहरे हुए थे। मि० भटनागर ने क्षमा याचना की; क्योंकि वे सवेरे की गाड़ी से वापस लौट रहे थे। सीटें रिजर्व हो चुकी थीं उनकी। मुझे स्वीकृति

देनी पड़ी। अगले दिन लंच के उपरांत मि० विश्वास के कमरे में बैठने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और यह भी पता चला कि गत मास उनकी पत्नी का देहान्त भवाली सेनीटोरियम में हुआ है। वे कई वर्ष से दिक्क की मरीज चली आ रही थीं। हमने सहानुभूति प्रगट की। उसे सुनकर, व्यथित स्वर में उन्होंने कहा, “विधाता को यही स्वीकार था जीवन बाबू। जीवन के दस वसन्त भी हम एक साथ नहीं काट सके। वह चली गई केवल छोड़ गई अपनी स्मृति। उसी के सहारे काटने होंगे शेष जीवन के दिन।”

“उनका कोई चित्र...?” स्नेह कहते कहते रुक गई।

मि० विश्वास ने अलमारी में से निकाल कर एलबम स्नेह को देते हुए कहा, “इसके हर पृष्ठ पर वही बैठी हुई है।”

स्नेह के एलबम खोलते ही मैं चौंक उठा, मिसिज़ विश्वास के रूप में विपला, मेरी बचपन की परिचिता। एकदम सारी घटनायें आँखों के सामने घूम गईं। तिवारी साहब की इकलौती बेटी थी वह। पड़ोस में रहने के कारण सम्बन्धियों जैसा व्यवहार था हमारे साथ। सच तो यह है कि उसने, जब तक वह वहाँ रही बहन के अभाव को पूरा किया था। इसके बाद वे लोग रंगून चले गये थे। तब से अब पता चला था, जब कि वह इस दुनिया में नहीं रही। मेरी कोरों से दो बूंद टपक कर उसके चित्र पर गिर पड़ीं। स्नेह ने तत्काल ही कहा, “अरे आप...।”

“कुछ नहीं स्नेह,” मैंने रुमाल से आँखों को पोंछते हुए कहा, “कल खिलने से पहले ही मुरझा गई, क्या गम खा गया उसे मि० विश्वास?”

“अक्सर कहा करती थीं कि मेरी उम्र चौबीस से अधिक नहीं है, यह वहम किसी ज्योतिषी ने डाल दिया था, उसी को मैं नहीं निकाल सका। जीवन बाबू! कोई उनकी इच्छा ऐसी नहीं थी जो पूरी न की गई हो। उनकी बीमारी में पैसा पानी की तरह बहाया गया, पर उसमें इतनी क्षक्ति नहीं थी कि यम के दूतों से विपला की रक्षा कर सकता। मरने से कुछ क्षण पूर्व...” कहते कहते उनका गला भर आया।

“क्या कहना चाहती थीं वे ?” स्नेह ने धीमे स्वर में पूछा ।

“विपला को सहारा देकर मैंने थोड़ा सा जूस उसके मुख में डाला था । उसी अवस्था में बैठे हुए उसने कहा था कि काश ! आपके ही हाथों में ये आँखें सदैव के लिए बन्द हो जातीं तो सारी अभिलाषाओं का लय हो जाता । मरने के लिए इससे अच्छा और कौन सा अवसर होगा ?”

“वे आपके हाथों में ही प्राण विसर्जन करना चाहती थीं ।”

“हाँ, लेकिन मैंने धीरज बंधाते हुए कहा था कि विपला तुम शीघ्र ही स्वस्थ होकर मंडी चलेगी । मंगलू चौधरी तुम्हारी रोज राह देखा करता है,” मि० विश्वास ने कहा ।

“यह मंगलू चौधरी कौन है ?” स्नेह ने प्रश्न किया ।

“व्यास नदी के किनारे एक झोपड़ी में रहता है, नाव चलाकर पेट पालता है, मंडी के लोग उसे कोई सिद्ध पुरुष समझ कर पूजते हैं, इससे अधिक मैं कुछ नहीं जानता मिसिज जीवन ।”

“फिर क्या हुआ ?” मैंने पूछा ।

विपला ने शुष्क होठों पर जबरदस्ती मुसकान लाते हुए कहा, “नहीं नाथ, अब बाबा के दर्शन नहीं कर सकूंगी, यम के दूत आ पहुँचे हैं मुझे लिबाने के लिए ।” उसको बेहोशी का दौरा सा पड़ा । मैंने घबरा कर पुकारा, “सिस्टर ।”

सिस्टर तत्काल दौड़ती हुई आई । परीक्षण किया विपला का । तत्क्षण ही मुझे डाक्टर को सूचित करने के लिए कहा । मैं दौड़ा हुआ डाक्टर के पास गया । वे मेरे साथ आये । कुछ देर देखने के बाद बोले, “विपला रुठ गई हमसे ।”

मैं विक्षिप्त की भाँति चिल्ला उठा ।

डाक्टर ने मेरी पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा था, “यह सब कुछ व्यर्थ है मि० विश्वास । रो कर मरने वाले की आत्मा को दुःखी मत बनाओ ।”

“आसू और मुसकान के मध्य मनुष्य एक पेन्डुलम है। मैं भी वही हूँ। उसी के सहारे विपला की अंत्येष्टि कर यहाँ चला आया हूँ, कभी-कभी मन में विचार उठता है कि इस वैभव और सम्पन्नता के आवरण को उतार कर जीवन को सादा घड़ियों में बिताऊँ। किसी पहाड़ी के दामन में, किसी सरिता के तट पर, छोटी सी कुटिया बना कर पड़ा रहूँ। जहाँ न लोक की परवाह हो, न परलोक की। न कोई अपने ऊपर रोने वाला हो, न कोई हँसने वाला।”

“विरक्ति का भी एक समय होता है विश्वास, बाबू।”

“आप ठीक कहती हैं मिसिज़ जीवन ; किन्तु जीने के लिये भी तो एक अवलम्बन चाहिए।”

“अवलम्बन मिल सकता है मि० विश्वास”, मैंने कहा।

उन्होंने शंकित दृष्टि से मेरी ओर देखकर पूछा, “कैसे?”

“अपने सुख गिनो, दुख नहीं।”

“इससे क्या होगा?”

“जीवन अत्यन्त सुखी बन जायेगा।”

“जिस के भाग्य में ही सुख न बढ़ा हो मि० जीवन।”

“मेरे लिए भाग्य एक बाजार के अतिरिक्त कुछ नहीं, जहाँ कुछ देर ठहरने से भाव गिर जाते हैं।”

“आप भाग्यवादी नहीं हैं।”

“कदापि नहीं, और न ही किसी को भाग्यवादी बनने का परामर्श दूँगा?”

“फिर क्या परामर्श दिया करते हैं आप?”

“हर इंसान को आशावादी बनना चाहिए। आशा ही जीवन है।”

“ऐसी अवस्था में आपको एकान्त वास नहीं करना चाहिये, जहाँ तक हो सके सोसाइटी मुव किया करें। इससे दिल भी बहलेगा और विपला की स्मृति भी दूर रहेगी।”

“आप ठीक कहती हैं मिसिज़ जीवन। कल आप लोगों की कम्पनी

में मैंने अपने को स्वस्थ अनुभव किया ।”

“हम लगभग दस दिन और ठहरेंगे यहाँ, कोशिश करूँगी कि इस अवधि बीच बहन विपला की स्मृति आपको व्यथित न करे ।”

“इसके लिए हार्दिक धन्यवाद ।”

“अब आज्ञा दीजिये ।”

“आपका कोई विशेष प्रोग्राम नहीं हो तो आज पाँच बजे का शो ही देख लिया जाये ।”

“प्रोग्राम तो विशेष कोई नहीं ?” मैंने कहा, “इनकी मर्जी है ।”

मेरा आशय समझ कर मि० विश्वास ने स्नेह की ओर देखकर पूछा “क्या विचार है आपका ? होटल जाना पसंद करेंगी या पिकचर ।”

“कौन सी देखेंगे ?”

“मिलियन पौंड नोट ।”

“ग्रेगरी पैक की ।”

“हाँ, हँसाते-हँसाते पेट में बल डाल देता है ।”

“कहाँ लग रही है ?”

“लक्ष्मी में ।”

स्नेह ने घड़ी की ओर देखते हुए कहा, “अभी दो बजे हैं । चलिए कुछ देर नौका विहार ही किया जाये ।”

इसके बाद दो घंटे तक नौका विहार किया । फिर ‘लेकसाइड’ में कॉफी पीने के लिए चले गये । इसकी सजावट तो विशेष नहीं थी; किन्तु बैठकर इसमें ‘लेक’ का आनन्द लिया जा सकता था । इसलिये संव्या समय से आठ बजे तक काफी भीड़ रहती थी इसमें । कॉफी पान के उपरांत पिकचर देखी गई । मैं इसे दोबारा देख रहा था । इस पर भी रुचि और मनोरंजन में लेख मात्र भी अन्तर नहीं पड़ा । ग्रेगरी पैक ने चित्र में जान डाल दी था । बीच-बीच में दर्शकगणों के हँसी के फव्वारे छूट रहे थे ।

सात बजे के करीब शो खत्म हुआ। हम लोग फ्लेट पर घूमने के लिए निकल गये। आज वहाँ पर बैंड का प्रोग्राम था। कुछ देर उसे सुनते रहे। डिनर के समय वहाँ से लौटे। मि० विश्वास का होटल पहले पड़ता था, उन्होंने डिनर के लिये बहुत आग्रह किया। मगर मुझे किसी पर भार बनना अच्छा नहीं लगता था ? इसलिए क्षमा मांग ली। वे चले गये और हम इंडिया होटल की ओर बढ़ गये।

इसके बाद के दस दिन मि० विश्वास के हमारे साथ आनन्द पूर्वक कटे। इस अवधि के बीच विपला की स्मृति उन्हें एक क्षण के लिए भी न आने दी। किलबरी, केमलज बैंक, शेर का डांडा, खुरपा ताल, सात ताल, हनुमान गढ़ी और गुफा महादेव, अधिकांश समय तो इन स्थानों को देखने में बीता और शेष समय नौका विहार, फ्लेट और माल पर भ्रमण तथा पिक्चरों और शेडी गो, फ्लेटीज और शेकले रेस्टोरेन्टों में। इन सब के बीच अधिकांश व्यय मि० विश्वास ने ही किया। अब मौसम खराब हो गया था। वर्षा अपने यौवन पर थी। अधिक ठहरना मूर्खता थी। दूसरे आनन्द का पत्र आया था, उसमें अपने को अस्वस्थ लिखा था। हम लोग नीचे उतरे। मि० विश्वास भी हमारे साथ ही उतर आये। बनारस पहुँचकर दो कमरों का एक मकान किराये पर ले लिया। आनन्द ने भी होस्टल छोड़ दिया। मि० विश्वास का स्वभाव उसे भी बहुत पसन्द आया।

मि० विश्वास काशी में होटल में ही ठहरे, कदाचित् उन्हें हमारे नये मकान में इतनी सुविधा नहीं मिल सकती थी। एक सप्ताह के उपरांत वे मंडी लौट गये। अगले दिन रजिस्ट्री कार्यालय में जाकर मजिस्ट्रेट के सामने विवाह हो गया। आनन्द और तृष्णा हमारे साक्षी बने।

विवाह की ग्रंथि पर सरकारी मोहर लगने के बाद की बात है। आनन्द ट्यूशन पर गया हुआ था। वर्षा पढ़ रही थी। उसने द्वार को बंद कर खिड़कियों पर पर्दे डाल दिए और मेरा सिर अपनी जाँघ पर रख कर अपना आँचल भूलने लगी। अश्रुजल उसकी आँखों से निकल

कर मेरे मुख पर गिरने लगा, मुझे लगा कि वे केवल अश्रु बिन्दु ही नहीं हैं, उनमें उसकी समस्त मानसिक और आत्मिक शक्ति भरी हुई है। एक-एक अश्रु उसके जीवन का एक-एक बिन्दु है।

मैंने उन्हें उसी के आँचल में संजो कर कहा, “तुम रो रही हो स्नेह, मुझ से कोई कष्ट पहुँचा है तुम्हें ?”

“नहीं,” उसने कहा।

“फिर इस उदासीनता का कारण।”

“इस कृत्य पर मेरा हृदय धिक्कारता है जीवन।”

“उसका इलाज भी मैंने सोच लिया है।”

“क्या ?” उसकी उत्सुकता जगी।

“मैं कल दिल्ली चला जाऊँगा, अवसर मिलते ही विवाह की बात कह कर उन्हें, तुम्हें बुलाने के लिए बाध्य कर दूँगा। मुझे विश्वास है कि वे हमें अवश्य क्षमा कर देंगे स्नेह।”

“मुझ से अकेले नहीं रहा जायेगा यहाँ।”

“कुछ ही दिनों की तो बात है, फिर आनन्द भी तो है यहाँ।”

इसके बाद वह खामोश हो गई। मैंने उसके दुःख को भुलाने के लिए बात शुरू की, “कितना सुहावना मौसम है आज ! ऐसे में गरम-गरम पकौड़ियाँ हो जातीं ?”

“कुछ सामान भी तो ले आइये जाकर।”

मैं उठा। सब्जी वाले की दूकान सामने ही थी। आलू, बैंगन, हरी मिर्च आदि ले आया। स्नेह तैयारी में लग गई। जिस समय आनन्द द्यूशन पर से लौटा उस समय पकौड़ियाँ तैयार थीं। सब ने मिलकर खाई। उसी अवसर पर आनन्द के सम्मुख मैंने दिल्ली जाने का प्रस्ताव रखा। उसे सुन कर उसने कहा, “सम्भाल लोगे सारे मामले को वहाँ, कहो तो मैं भी चलूँ ? कदाचित् माँ को मेरी बात पर तुम्हारे से अधिक विश्वास है।”

“ऐसी कोई बात नहीं है आनन्द। सब काम ठीक हो जाएगा वहाँ।

बस तुम यहाँ स्नेह का ध्यान रखना, यह बहुत धबड़ा रही है।”

“इसकी ओर से निश्चित रहो जीवन, बहन को भाई के पास कभी कष्ट नहीं मिलेगा। हाँ, जा कब रहे हो?”

“कल।”

“लौटोगे कब?”

“जल्दी ही।”

दोनों चुप रहे हम। स्नेह ने कल की तैयारी में मेरी अटैची ठीक कर दी। इसके बाद का समय हँसी खुशी बीता। अगले दिन दोनों मुझे ट्रेन तक छोड़ने आये। ठीक समय पर गाड़ी चल दी। उसने रुमाल हिला कर विदा दी। जित्ना कुछ न कह सकी; किन्तु आँखों ने सब कुछ कह दिया था। धीरे-धीरे उसका चेहरा आँखों से अश्रुमय हो गया।

मेरी सारी रात इन्हीं विचारों के चित्रों को देखने में कटी। कुछ देर के लिए भी पलकें न झप सकीं। सवेरा हो गया था। सोये हुए मुसाफिर उठ-उठ कर शौचादि में लग गए थे और मैं उन विकारों को जो इंसान को आग की तरह जलाते हैं, निकालने के लिए खिड़की में से प्रकृति को निहार रहा था। शरद की सुहावनी पवन सुखद सी प्रतीत हो रही थी। शिरीष के पुष्पों के समान हरे तोतों की चोंच शोभायमान लग रही थी। उनकी लाल-लाल पंजी चोंचों में धानों की बालियाँ लेकर नीलाम्बर में उड़ना इन्द्र धनुष की शोभा तुल्य दृष्टिगत होता था।

सहसा किसी का स्वर मेरे कानों में पड़ा, “अरे ! आप तो बिल्कुल भी नहीं सोये।”

मैंने खिड़की से मुँह उठाकर देखा सामने वाली सीट पर बैठा हुआ एक नवयुवक पूछ रहा था। मैंने मुसकरा कर उत्तर दिया, ‘जी नहीं, मुझे सफर में सोने की आदत नहीं है।’

“अरे साहब ! हमसे सोये बिना रहा नहीं जाता।” उसने सिगरेट की डिब्बी मेरी ओर बढ़ाते हुए कहा।

“बस, धन्यवाद।”

“अरे साहब, शौक तो फरमाते होंगे, तकल्लुफ को दियासलाई दिखाइये और सिगरेट का लुत्फ उठाइए ।”

मुझे उस नौजवान की गुफ्तगू बड़ी दिलचस्प लगी । मैंने सिगरेट सिलगाते हुए पूछा, “क्या करते हैं आप ?”

“यही चीड़ा फाड़ी”, उसने लापरवाही से उत्तर दिया ।

“कहाँ ?”

“लखनऊ के मेडीकल कालिज में ।”

“मतलब है कि डाक्टरी पढ़ी जा रही है ।”

“अरे साहब, आप डाक्टरी की बात कहते हैं, अगर पढ़ने के लिए ही गए होते तो कभी की प्रेक्टिस चली होती दिल्ली में ।”

“तब...।”

“जिन्दगी का लुत्फ उठाया जा रहा है बस...।”

“तबीयत के रंगीन मालूम पड़ते हो ।”

“अरे साहब ! यह तो ऊपर वाले का गुनाह है, भला हम किस खेत की मूली हैं ।

“सुनाइए ! आप कहाँ तशरीफ ले जा रहे हैं ?”

“आप ही की रंगीन दुनिया में ।”

“फिर तो खूब साथ रहेगा ।”

“कब तक ठहरोगे ?”

“यही दो चार दिन ।”

“बस, यहीं लुटिया डुबो दी आपने, जन्मत की सैर के लिए दो चार वर्ष नहीं तो कम से कम इतने महीने तो चाहिए ।”

“मजबूरी है साहब, सब काम धंधा अकेले पर ही है, बड़ी मुश्किल से ढूँढ सका हूँ वहाँ । हज़रत गंज में एक लड़की की शादी में शामिल होना था ।”

“हज़रत गंज, अरे साहब, वहीं तो अपना भी डेरा है ।”

“आप वहीं रहते हैं ।”

“जी हाँ, मेन रोड पर, गुप्ता एण्ड को० के ऊपर। आप को वहाँ किसके यहाँ जाना है ?”

“ला० कुन्दन लाल के यहाँ, उनकी लड़की की शादी है।”

“तृप्ति की।”

“यह मैं नहीं जानता, क्या आप उनसे परिचित हैं ?”

“जी हाँ, पड़ोस में ही रहते हैं दूसरे तृप्ति मेरी सहपाठिनी है ?”

“आपको उसने शादी के बारे में बिल्कुल भी नहीं बताया।”

“अरे साहब, नहीं, पन्द्रह दिन पूर्व तो बिल्कुल भी जिक्र नहीं था, मैं माँ को देखने क्या गया कि पीछे सारा गोलमाल हो गया, हाय ! मनोज बेचारा।”

“यह मनोज कौन है ?”

“तृप्ति की दुनिया था कभी ; मगर अब तो वह किसी और की दुनिया बसाने जा रही है, नराधम कहीं की, प्यार में डस गई.....।” कहते-कहते उसके चेहरे का उल्लास क्षीण पड़ गया।

“ऐसा न कहिये, मजबूरियों के आगे इंसान को झुकना पड़ता है, कदाचित् तृप्ति भी किन्हीं मजबूरियों का शिकार हुई हो।”

“अरे साहब पढ़ी लिखी लड़की के आगे कोई मजबूरी नहीं है, इस का तो कोरा बहाना होता है, मनोज से अच्छा कोई और मिल गया होगा ?”

मैं उसे कैसे बताता कि मजबूरी पढ़ाई लिखाई को नहीं देखती, वह देखती है नाजुक परिस्थितियों को और समय को, तृप्ति ही क्या मुझ जैसा इंसान भी शिकार हो गया था उसका। स्वजनों के समक्ष मेरी भी तो कुछ न चल सकी थी। एक विवाहिता के होते हुये भी मुझे किसी को बलि चढ़ाने के लिए लाना पड़ा था। जिस प्रकार मैं स्नेह के विषय में मुँह खोलकर कुछ न कह सका था वैसे ही तृप्ति भी मनोज के विषय में न बता सकी होगी। कैसे सही होगी उसने इतनी बड़ी चोट ? चोट का क्या है, वह तो सभी चीज से लग सकती है ? किन्तु जिह्वा की चोट,

जो मनोज ने उसे पहुँचाई होगी, सब से अधिक लगी होगी। नारी है ना, सहन शीलता की प्रतीक होती है, सह लेगी सब कुछ, वैसे ही स्मृति की तरह।

लखनऊ का भव्य जंकशन आ गया था। गाड़ी प्लेट फार्म पर लग रही थी। 'कुली चाहिए साहब' की आवाज़ के साथ कुली लोग कम्पार्ट-मेंटों के सामने आ खड़े हुए थे। मैं तो यहाँ के लिए भ्रजनबी था। मि० रंजन मेरा पथ प्रदर्शन कर रहे थे। यही होगा उनका नाम, जैसा कि मैंने कुली के द्वारा अटैची को उतारते हुए पढ़ा था। मैं उनके पीछे-पीछे उतर गया। कुली दोनों का सामान लेकर चला। सामान था ही कितना केवल दो अटैची ?

गेट पर टिकट चेकर ने रंजन को देखकर पूछा, "बड़े दिनों में लीटे डाक्टर।"

"क्या करूं भाई, माँ ने देर करा दी, बड़ी मुश्किल से आ पाया हूँ आज भी ?"

"और आपका परिचय।"

"ये मेरे मित्र हैं मि०...."

"जीवन", मैंने वाक्य को पूरा किया।

बाहर निकल कर मि० रंजन बोले, "टिकट क्लेक्टर से लेकर स्टेशन मास्टर तक सभी गुलाम हैं। लखनऊ आते हुए मैंने कभी टिकट नहीं खरीदा मि० जीवन।.... अब बताइये इक्के की सँर कराऊँ या टैक्सी की।"

"जो ठीक हो," मेरे मुख से निकला।

"ओ इक्के वाला, घोड़ा तुम्हारा कैसा है, चाल दिखायेगा ?"

"अम्बल नम्बर का सरकार।"

"इस पर सामान रख दो।" कुली ने सामान रख दिया।

इक्के पर बैठते हुए उसने एक चवन्नी कुली की हथेली पर रख दी। उसे थोड़ा समझ कुली ने दीन स्वर में कहा, "सरकार यह तो..."

“बस, बस स्टेशन मास्टर के पास चलना चाहता है क्या ?”

इक्का आगे बढ़ गया। कुली कुछ देर खड़ा बुदबुदाता रहा ; पर हम न सुन सके कुछ, घोड़ा सरपट दौड़ा जा रहा था। पन्द्रह मिनट में ही गन्तव्य स्थान पर पहुँचा दिया उसने। मैं डर रहा था कि कहीं इससे भी कुली की तरह न उलझ पड़े रंजन, सो उतरते ही एक रुपया ताँगे वाले के हाथ पर रख दिया। उसने देखा और मुसकरा दिया। हम दोनों अटेची लेकर कमरे में पहुँचे। एक अघेड़ पूरबिये ने हमारा स्वागत किया। मि० रंजन ने सामान रख कुर्सी पर बैठते हुए पूछा, “चाय तैयार है तुलसी।”

“सरकार दो मिनट में हो जाती है।” कह कर वह किचन की ओर चला गया।

उसके जाने पर मि० रंजन ने कहा, “अगली बिल्डिंग ही कुन्दन लाल की है, कोई जल्दी का काम तो नहीं।”

“बारात कल आने वाली है, जल्दी ही क्या है, एक उपहार पहुँचाना था।”

“तृप्ति क्या आपकी...?”

“निश्चिन्त रहिए, मैं उसके परिवार में से किसी को नहीं जानता ? कुन्दनलाल जी बाबूजी के मित्र हैं, बस इसी नाते से मुझे आना पड़ा है।”

तुलसी चाय और नमकीन लेकर आगया था। रंजन ने दो कप तैयार कर, एक मेरी ओर बढ़ाते हुए पूछा तुलसी से, “मनोज बाबू आये थे क्या ?”

“हाँ, सरकार, पिछले इतवार को आये थे।”

“कुछ कहते थे।”

“गाँव जा रहा हूँ कहा था।”

“बस...।”

“हाँ सरकार...तृप्ति बीबी भी पूछती थी आप को, कल शादी हो

रही है उनकी ।”

सुनकर रंजन कुछ चिन्तित सा हुआ, फिर बाला, “पानी तैयार है तुलसी, कालिज जाना है मुझे ।”

“हाँ सरकार ।”

“आप आराम कीजिए मि० जीवन, लंच पर लौट आऊँगा मैं ।” कहकर रंजन अन्दर चला गया । इसके बाद वह कब कालेज गया, इस का मुझे पता नहीं, रात का जागा हुआ था, सो सो गया ।



अगले दिन तृप्ति पराई हो गई। यथा समय बाबू जी का पत्र और वह उपहार मैंने तुलसी के द्वारा ला० कुन्दन लाल जी के यहाँ पहुँचा दिया था। न जाने, क्यों मैं उनके घर न जा सका? किसी बदनसीब के फूटते भाग्य का तमाशा देखने की इच्छा न जाने क्यों नहीं हुई मुझे? हाँ, पत्र को पढ़कर कुन्दनलाल जी स्वयं मुझे बुलाने के लिए आये। तबीयत ठीक न होने का बहाना किया। तथापि खाने की सामग्री भिजवाये बिना न रह सके वे, विवश हो रखनी तो पड़ी, पर खा न सका मैं। वे मिष्ठान नहीं विष से प्रतीत हुए, जिन्होंने दो हृदयों को सदा के लिए मिटा दिया था। अगले दिन सवेरे कुछ भाग तुलसी को और कुछ भंगी को दे दिया।

विदाई बेला पर तृप्ति के पिता के कहने पर मैं उससे मिला। वह जिन्दा लाश सी मुझे प्रतीत हुई। मुख पर पाँडु रोग के समान पीलापन छाया हुआ था और आँखें सूभी हुई थीं। ऐसा लगता था कि उसने अपने स्वजनों के लिए समाज और धर्म की बलिवेदी पर अपनी खुशियों के साथ ही अपने आप को उत्सर्ग कर दिया है। तत्क्षण माँ ने कहा था, “तृप्ति जीवन भैया से बात नहीं करोगी। दिल्ली में तो इन्हीं का सहारा है तुम्हें।”

एक बार दृष्टि ऊपर उठी, जिह्वा नहीं खुली, केवल हाथ जुड़ गये,

आँखों में बेबसी का दरिया जो बह रहा था । शोर सुनाई दिया, कोई कह रहा था, “रास्ता छोड़ो भई, डाक्टर साहब को बँठने दो ।” सबको हटना पड़ा, मुझे भी उनके साथ ही, वर को पहचान गया मैं, वे डाक्टर प्रेम थे ।

गाड़ी चल दी । सब लौट गये घर की ओर । कहीं रिकार्ड बज उठा उसी समय ?

अशकों से तेरी हमने तस्वीर बनाई है ।

रो रो कर मुहब्बत की तकदीर बनाई है ॥

कितनी सुन्दर गजल आ रही थी ? पर उसे सुनने के लिए मैं खड़ा न रह सका वहाँ । कमरे में आकर लेट गया । रंजन कालिज से नहीं लौटा था अब तक । लंच का समय गुज़र गया था । तुलसी इस बीच कई बार खाने की कहने आया । उसे यह कहकर टाल दिया कि रंजन बाबू के साथ ही देखा जायेगा । तुलसी उनकी आदत से भली भाँति परिचित था, अंतिम बार कहता गया, “सरकार का खाने का कोई टाइम नहीं ।”

मैं उसके उत्तर में केवल मुसकरा दिया । वह चला गया ।

मुझे अकेला समझ विचारों ने घेर लिया । मैं सोच रहा था तृप्ति के विषय में । क्या उसकी गृहस्थी सुचारु रूप से चल सकेगी ? क्या प्रेम की दीवार बाधक नहीं बनेगी ? सम्भवतः सन्तुष्ट न कर सके वह अपने पति को । मैं भी तो सन्तुष्ट नहीं कर सका था स्मृति को । आन्तरिक प्रेम से अंकुरित पौधा बाह्य आनन्द के सिंचन से कब तक जीवित रह सकता है ? एक ना एक दिन तो मुरझा ही जाता है । अवस्था होती है इन परिस्थितियों में पड़ी हुई नारी और पुरुष की ।

स्नेह के स्थान पर जब स्मृति ने वधू स्वरूप घर में प्रवेश किया था तब मेरा हृदय अन्दर ही अन्दर रो उठा था; किन्तु उस रुदन को किसी के सम्मुख प्रगट करने का सामर्थ्य मुझ में नहीं था ? धीरे धीरे उसका मैं अभ्यस्त हो गया । स्मृति की हर इच्छा की पूर्ति की, पर प्यार न दे

सका ? वह दे भी कैसे सकता था ? वह तो स्नेह की खाती थी । मुझे बनारस से आये कई मास बीत गये । इस बीच आनन्द के कई पत्र आये । उत्तर में यही लिखता रहा कि मैं असाध्य रोग से पीड़ित हूँ, कुछ अवस्था सुधरने पर आ सकूँगा । यह सफेद झूठ बोलना उड़ा था आनन्द से, अपने अपराध को छिपाने के लिए जोकि मेरी निर्बलता ने मुझे करा दिया था ।

इसी बीच स्मृति ने मुझे बताया कि वह मैं बनने वाली है । उस सूचना को पाकर मैं बहुत खुश हुआ था । उस दिन से मैं इसके प्रति कुछ नम्र सा हो चला था, पर वह इससे भी सन्तुष्ट नहीं थी, कदाचित् वह रोमान्स चाहती थी, वह मेरे पास नहीं था । वह खीझ उठती थी । उसकी खीझ को दूर करने की एक मात्र औषधि थी मेरे पास सहानुभूति । कभी-कभी वह सहानुभूति विपरीत ही असर करती थी । कुछ दिनों से वह मुझे शंकित दृष्टि से देखने लगी । किसी भी बात का उत्तर झोम से परिपूर्ण मिलता ? इसका कारण न समझ सका मैं । आभी से पूछा, तो उन्होंने बताया कि पेट की गर्मी से परेशान सी रहती है वह । हो सकता है, कदाचित् यह ठीक भी हो, किन्तु मैं सन्तुष्ट न हुआ और स्मृति मेरे लिए एक रहस्य बन गई । उसका अनुपम लावण्य, उसकी मनोहारिणी छवि, उसकी अद्भुत विचारशीलता कभी-कभी तो मुझे अपनी ओर आकर्षित करती थी; किन्तु इसके विपरीत ही उसकी मान-शीलता, विचार स्वाधीनता और अनम्रता मुझे भयभीत कर देती थी । इस अवस्था में मैं कह दिया करता था, “स्मृति ! तुम ऐसा पुष्प हो जो छाया में ही अपनी गंध फैलाता है ।”

“और आप ऐसे शूल हैं, जिसे घूष ही सुहाती है ।”

ऐसे कितने ही कटाक्ष सुनने को मिलते थे ? इस पर भी मेरी जिह्वा चुप रहती थी । कारण था, स्नेह और स्मृति दोनों के बीच मैं अपने को अपराधी समझ बैठा था । कहीं जिह्वा के खुलने से मेरा अपराध स्पष्ट न हो जाये, इसलिए चुप्पी ही साधे रखता था । वह चुप्पी स्मृति को

फूटी आँख भी नहीं सुहाती थी ।

दीवाली से अगले दिन की संध्या को मैं टेबुल पर बैठा एक कहानी को पूरा कर रहा था । उसका नाम रखा था मैंने 'पहलू एक, रूप दो' । स्मृति आ पहुँची वहाँ । पढ़कर बोली, "क्या अपनी कहानी लिखी जा रही है ?"

मैं उसके व्यंग्य को न समझ सका, सहज स्वभाव से पूछा, "कैसे ?"

एकदम विस्फोट सा हुआ, उसी ध्वनि में वह गर्ज उठी, "यह स्नेह कौन है जिस पापिन ने मेरे जीवन को निरर्थक बना रखा है, बार बार चिट्ठी डाल देती है जैसे उसका खसम यहाँ बैठा हो ?"

स्मृति के अंतिम शब्द मुझे बहुत बुरे लगे, विशेषकर एक शिक्षित नारी के मुख से । क्रोध आया कि उसकी जबान को खींच लूं, न जाने क्यों पीकर रह गया, भाभी दौड़ी चली आई कमरे में, उनके अलावा घर में कोई नहीं था ? वे बोलीं, 'कैसा शोर मचा रखा है बहन, घर की इज्जत का तो ख्याल करो ?' कह कर वे चली गईं । स्मृति चुप चाप खड़ी हो गई । क्रोध आँसू बनकर निकल पड़ा और पीड़ा बोल उठी मौन भाषा आँसू में । यह तो पता लग ही गया था कि इस भावव्येष का कारण स्नेह के पत्र हैं । इसके लिये स्नेह दोषी नहीं थी । कुछ दिनों में ही लौटने का वायदा करके आया था उससे । मगर पाँच महीने होने को आये थे, मैं उसकी सुध न ले सका था जबकि परीक्षा सिर पर थी उसके । मैंने स्नेहसिक्त स्वर में स्मृति को अपने पास बैठते हुए कहा, "यह ठीक है कि स्नेह मेरी प्रेयसी है, मैं उसका हृदय से सम्मान करता हूँ ।" वास्तविकता को छिपाते हुए मैंने पुनः कहा, "लोक निभाने के लिए तुम्हारे से..."

"आप शौक से स्नेह के साथ रंगरलियाँ मना सकते हैं, मैं तो जीवित ही..."

"क्या कह रही हो स्मृति ? बात बढ़ाने से कोई लाभ न होगा;

दोनों का जीवन ।”

“जीवन किसका रह गया है बाकी ?”

“तुम्हारे से ऐसी आशा न थी ।”

“मैंने भी ऐसा कभी न सोचा था ।”

“मैं तुम्हें सब कुछ दे सकता हूँ पर हृदय नहीं ।”

“मैं भिखारिन नहीं विवाहिता हूँ, मेरे भी कुछ अधिकार हैं आप पर ।”

“आगे बढ़ने की चेष्टा मत करो स्मृति, ठोकर खा जाओगी ।”

“बहुत अच्छा, मेरा रास्ता और आपका रास्ता भिन्न है ।” इसके बाद वह आवेश में ही कमरे से चली गई । मैं भी व्यथा को भुलाने के लिए लिखना छोड़ घूमने के लिए चला गया । वहाँ से लौट कर कमरे में आया तो देखा कि स्मृति वहाँ नहीं थी । सोचा गुस्से में भाभी के पास ऊपर बैठी होगी । सो चुपचाप लिखने के लिए बैठ गया । इसके सिवा और कोई काम तो न था मुझे । भट्टे के काम में रुचि नहीं थी । इंजीनियरिंग पास करने पर भी कोई स्थान न मिल सका था ? बाबूजी उसके लिए प्रयत्नशील थे । साढ़े दस बजे के करीब भाभी दूध देने आई तो मैंने कहा, “व्यर्थ में कष्ट किया भाभी तुमने, स्मृति ले आती ।”

“मेरे लाने में कोई हर्ज है तो उसके हाथ भेज दिया करूँगी, अब पी लो ।”

दूध को पीकर गिलास पकड़ाते हुए मैंने पूछा, “क्या स्मृति का पारा अब भी नहीं उतरा भाभी ?”

“पिता के घर उतर जायेगा अपने आप ही ।”

मैंने आश्चर्य चकित स्वर में पूछा, “क्या चली गई वह ?”

“हाँ,” संक्षिप्त सा उत्तर देकर भाभी खाली गिलास लेकर चली गई । उस रात मैं बिल्कुल न सो सका, कलम चलती रही, अन्त में तीन बजे वह कहानी पूरी हो गई । शेष रात्रि भविष्य के कार्यक्रम को बनाने में कटी । सवेरे जब भाभी बेड टी देने आईं तो आँखें बोझिल थीं पर

मन खुश था; क्योंकि मैं अब एक निश्चय पर पहुँच चुका था।

मैंने कहाँ, “मैं भी आज चला जाऊँगा भाभी।”

“कहा,” आश्चर्यचकित स्वर में उसने पूछा।

“बनारस, वहीं कुछ धधा देखूँगा।”

“ठहरोगे कहाँ?”

“कहीं न कहीं स्थान मिल ही जायेगा?”

वह चली गई। इसके बाद कुछ आवश्यक सामान अर्टची में लगाया। माँ को बड़ी मुश्किल से राजी कर पाया मैं। वह अब बाहर भेजना नहीं चाहती थी और उसी रात को बनारस के लिए गाड़ी में बैठ गया।

मुझे सकुशल लौटा देखकर स्नेह फूली न समायी। उस दिन गर्म-गर्म हलुवा खिलाते हुए पूछ बैठी, “अब माँ जी की तबीयत कैसी है?”

“चलने फिरने लगी हूँ?”

सुन कर दूसरा प्रश्न कर बैठी, “मेरे पत्रों का उत्तर क्यों नहीं दिया? जानते हो कितने लिखे थे, आधी दर्जन? आनन्द भैया न रोकते तो अब तक दिल्ली ही पहुँची हुई होती। मैंने मन में सोचा, स्नेह ने छः पत्र लिखे और मुझे एक भी नहीं मिला, वे सब के सब स्मृति के ही हाथ लगे। पता नहीं क्या-क्या लिखा हुआ होगा उनमें? मैंने इन आन्तरिक भावों एवं वास्तविकता को छिपाते हुए कहा, “रोज आने की तैयारी रहती थी, इस लिए सोचा जवाब क्या दूँ, इसी गफलत में रह गये तुम्हारे पत्रों के उत्तर?”

इसी प्रकार एक महीना बीत गया। भरसक प्रयत्न करने पर भी कहीं काम न मिल सका? सारा भार आनन्द सम्भाले हुए था। कब तक किसी पर बोझ बना जा सकता है? यह बात रह-रह कर मुझे सताने लगी थी। धीरे-धीरे मेरा स्वास्थ्य गिरने लगा। अब तक किसी प्रकार अपने दुःख को समेटे हुए था? किन्तु एक दिन मेरे चेहरे पर उसने उदासी देख ही ली, विकल होकर पूछ उठी, “क्या हुआ?”

मैंने हँस कर टालने का प्रयत्न किया, “कुछ भी तो नहीं।”

किन्तु स्नेह ने जाने बिना पीछा छोड़ा नहीं और जब उसे पता लग गया कि मैं गृह त्याग कर आया हूँ, तो उसने सहानुभूति के स्वर में कहा, “मैं जानती थी जीवन, बाबूजी मुझे कदापि कुलवधू के रूप में स्वीकार नहीं करेंगे। अब भी समय है मेरी चिन्ता को छोड़ो और उनकी मर्जी से घर बसा कर सुख से दिन बिताओ।”

“स्नेह, मैं घर वापस नहीं जाऊँगा।”

“लौट जाओ जीवन, मुझ भाग्यहीन के साथ कब तक ठोकें खाते फिरोगे ?”

मैंने दाँत पीस कर कहा, “ऐसा हर्गिज नहीं हो सकता, स्नेह।”

“क्या नहीं हो सकता जीवन ?” आनन्द ने सब्जी का थैला स्नेह के समीप रखते हुए पूछा।

क्या उत्तर देता, सो चुप रहा ?

मुझे चुप देख आनन्द ने स्नेह से पूछा, “स्नेह ! जीवन क्या कह रहा था ?”

“ये नहीं, मैं कह रही थी भैया, घर लौट जाने के लिए।” स्नेह ने सब्जी को टोकरी में रख थैला खाली करते हुए कहा, “मुझ से इनकी उदासी नहीं देखी जाती भैया। “नौकरी का कहीं डील नहीं अभी तक, घर का द्वार बन्द है इनके लिए, मेरे सौ रुपये में होता क्या है, फिर ऊपर से कालेज का खर्च, किताबों का खर्च, अगर कहीं उन लोगों को मेरी शादी का पता लग जाये तो वह भी बंद। आप के सिर भी कब तक बोझ बने रहेंगे, आप के घरबार की भी....”

“मुझे पराया समझने लगे हो अब तुम दोनों। तुम्हारी बदौलत तो मैं भी सुख से टुकड़ा मुँह में डाल लेता हूँ। तुम्हीं तो मेरा घर बार हो, पगले कहीं के, मेरे होते हुए तुम्हें चिन्ता की क्या जरूरत है ? अगर घर के दस सदस्य हों तो क्या सबको ही कमाना चाहिए ?”

कितने उच्च विचार थे आनन्द के ? उस महान् आत्मा के समुद्ध

मेरा सिर झुक गया ? मैंने चिन्ता करनी छोड़ दी । आनन्द ने मेरे लिए दो एक ट्यूशनो का प्रबन्ध कर दिया था । पत्रों द्वारा मि० विश्वास से अब तक सम्बन्ध बना हुआ था । कई मास और बीत गये ? इस बीच मैंने घरवालों को एक भी पत्र नहीं डाला । स्मृति की याद तो मुझे नहीं आई ; किन्तु नवजात शिशु के विषय में जानने की जिज्ञासा अवश्य उत्पन्न हुई । अन्त में उसे भी दबाना पड़ा ।

मई मास में मि० विश्वास का एक पत्र मिला जिस में लिखा था कि तुम्हारे उपर्युक्त एक स्थान है, मंडी के सरकारी प्रशिक्षण केन्द्र में । आना चाहो तो एक सप्ताह के अन्दर पहुँच जाओ । मैं इस अवसर को छोड़ना नहीं चाहता था । स्नेह की आनन्द को छोड़ कर जाने की इच्छा नहीं थी । आनन्द मध्यस्थ था । अन्त में मेरी जीत हुई । पहुँचने की सूचना मि० विश्वास को दे दी गई । बनारस छोड़ने से पूर्व स्नेह की अनुपस्थिति में आनन्द से मैंने अनुनय की, “दिल्ली मेरा गंगा में डबने का समाचार भेज दो ।”

सुन कर वह मेरे चेहरे की ओर देखता रहा कुछ देर, फिर बोला, “पागल हो गये क्या जीवन ? क्या प्रयोजन है इस में ?”

“मेरी ओर से सदैव के लिए निश्चिन्त हो जायेंगे, वे लोग ।”

मेरा उत्तर सुन कर वह सन्तुष्ट नहीं हुआ, पर उसने मेरा कहा अवश्य किया था, इसका पता मुझे लग गया था उसके पत्र द्वारा ।

मंडी रम्य स्थान था । काँगड़ा की मनोहर घाटी में से होती हुई एक बलखाती पहाड़ी सड़क वहाँ पर गई थी । मैंने मि० विश्वास की अध्यक्षता में कार्य-भार सम्भाल लिया था । हमारे लिए रहने के लिए दो कमरों का फ्लैट, सभी सुविधाओं से युक्त मि० विश्वास ने ठीक करा दिया था । इसलिए हमें नये स्थान पर पहुँच कर किसी प्रकार की दुविधा का सामना नहीं करना पड़ा ? कुछ दिनों तक आनन्द की स्मृति हमें बहुत व्यथित करती रही फिर धीरे-धीरे वह दूर हो गई ।

यहाँ का मौसम और हरियावल भेड़ पालन के लिए विशेष उपर्युक्त है। अभी तक वैज्ञानिक ढंग पर भेड़ पालन फार्म नहीं बन सका है तथापि गड़रिये अपनी भेड़ों की देख-भाल भली-भांति कर लेते हैं। उससे मुलायम एवं सफेद रंग की ऊन प्राप्त होती है। उनसे शाल, लोई और कम्बल आदि तैयार किए जाते हैं।

मैं प्रशिक्षण केन्द्र में स्टोर इंचार्ज लगा था। वहाँ पर मेरी इंजी-नियरी काम नहीं आई थी। वहाँ की पहाड़ी बालाओं को 'बुनकरो' की शिक्षा लेते देख स्नेह की भी इच्छा हुई कि वह भी कुछ सीखे। मैंने उसे निरुत्साहित नहीं किया। उसने एक वर्ष तक विस्तृत शिक्षा ली। पहले चार मास में उसे ३०) प्रति माह भत्ता मिला। अगले चार मास में भत्ता केवल २०) रुपये रह गया और मासिक रूप से श्रम मिलने लगा। अंतिम अवधि में कार्य की किस्म के अनुसार उसकी मजदूरी बढ़ा दी गई और भत्ता कम हो गया। प्रशिक्षण की समाप्ति पर इसी केन्द्र में कुशल बुनकरो के रूप में काम मिल गया।

वह अपने इस काम से बहुत सन्तुष्ट थी। उसने अपने हाथ से सबसे बढ़िया शाल बुनकर आनन्द को भेंट स्वरूप भेजी। आनन्द ने पत्र द्वारा उसका धन्यवाद किया और मंडी आने के लिए भी लिखा; किन्तु उसके भाग्य में आना नहीं लिखा था।

अगले मास तृष्णा का पत्र मिला। वह शोक समाचार से भरा हुआ था। पढ़कर स्नेह बेहोश हो गई। उसका भाई आनन्द हैजे का शिकार हो गया था। वह कई दिन तक विक्षिप्तावस्था में रही। मैंने और मि० विश्वास ने हर प्रकार से उसे सान्त्वना दी। इससे पूर्व मि० विश्वास हमारे यहाँ बहुत कम आया करते थे और इसके बाद नित्य ही सवेरे और संध्या को वे अवश्य होकर जाते।

जब कभी भी प्रशिक्षण से हमें अवकाश मिलता, मंगलू चौधरी की कुटिया तक हो आते, घंटों उससे बातें करते और इस रम्य घाटी की कहानियों को सुना करते, और कभी नौका विहार भी।

बाबा को भी हमारे से काफी स्नेह हो गया था और कई बार उन्होंने हमारा आतिथ्य भी स्वीकार कर लिया था। इस प्रकार हमारे दिन बाबा और मि० विश्वास के सहवास में खुशी से कट रहे थे।

अतीत के चल चित्र ऐसे ही चलते रहते यदि तुलसी चाय लेकर न आ गया होता। मैंने उसे देख पूछा, “अभी नहीं लौटे तुम्हारे मालिक।”

“किसी पिनक में बैठ गये होंगे साहब?”

मैंने बिस्कुट का टुकड़ा मुँह में रख चाय का घूंट भरते हुए कहा, “पिनक।”

“हां साहब, जब चढ़ जाती है तो सब कुछ भूल जाते हैं।”

इस पर भी मैं उसका आशय न समझ सका। उसने थोड़ी देर चुप रहकर पूछा, “खाना कितनी देर में खाइयेगा।”

मैं सुबह से चाय और नाश्ते पर ही था इसलिए कह दिया, “सात बजे के करीब।”

सुनकर तुलसी चला गया। छः बजे के करीब मैं घूमने जाने के लिए तैयार हो रहा था कि रंजन ने कमरे में प्रवेश किया। उसका चेहरा उतरा हुआ था और वह कुछ घबराया हुआ भी था। मैंने पूछा, “क्या बात है रंजन, इतने परेशान क्यों हो?”

मेरे प्रश्न का उत्तर न देकर वह बोला, “दिल्ली जाकर एक काम करोगे मेरा जीवन।”

मैंने स्वाभाविक रूप में कह दिया, “भई, इसमें पूछने की क्या बात है?”

“वह काम ही कुछ ऐसा है, तृप्ति तक एक सप्ताह भेजनी है।”

“सप्ताह।”

“हाँ जीवन! मनोज अपनी नाकामयाब मोहब्बत को न देख सका। उसने जहर खा लिया है।”

“वह तो गाँव चला गया था।”

“नहीं जीवन, आज ही उसकी लाश का पोस्ट मार्टम हुआ था,

पुलिस केस जो बन गया था ।”

“उफ़ !” मेरे मुख से निकला, कुछ देर शांत रह कर मैंने कहा,
“इस दुखद समाचार को पहुँचा कर तृप्ति को दुःखी करना चाहते हो क्या ?”

“हाँ जीवन ! वह पापिन है । उसी ने मनोज की जान ली है ।”

कुछ दुःखित स्वर में पुन कहा रंजन ने, “तुम नहीं जानते जीवन । मनोज की बुद्धि असाधारण थी । कालेज के सभी प्रोफेसरोँ को उस पर गर्व था । उसे परिश्रम के उपरांत विशेष योग्यता के लिए विदेश भेजे जाने का प्रबन्ध किया जा रहा था सरकार की ओर से; किन्तु उसके सिर पर तो मौत मंडरा रही थी, लोगों की सेवा कैसे कर सकता था वह ? आज कालेज में उसके लिए शोक प्रस्ताव पास किया गया और जब उस प्यार के दीवाने की अर्थी श्मशान घाट पर पहुँची तो वह विद्यार्थियों से भरा हुआ था । अब इन्हीं हाथों से उसका अंतिम संस्कार करके आ रहा हूँ जीवन । मुझे दुःख इसी बात का है कि मैं उसकी आखिरी स्वाहिश भी न जान सका । अब तुम्हीं बताओ, तृप्ति को उसका दंड नहीं मिलना चाहिए ।”

“तृप्ति स्वयं दंडित हो रही है रंजन । उसका चेहरा देखते तो पता लगता तुम्हें । मनोज ने आत्मघात कर अपनी व्यथा का अंत कर लिया किन्तु तृप्ति तिल-तिल कर जल रही है उस ब्यथाग्नि में, वह जीवित भी मरी हुई है ।”

“जीवन ।”

“हाँ रंजन, मैंने आज उसकी मजबूरियों को समझा है । उसने अपने स्वजनों की खुशी के लिए अपनी आहुति दे दी है ।”

“मजबूरियों से किसी का पाप हल्का नहीं हो जाता जीवन ?”

“ठीक कहते हो रंजन कि मजबूरियाँ किसी पापी को फाँसी के फंदे से नहीं उतार सकतीं, किसी कठोर दंड से नहीं बचा सकतीं, पर इंसान को दंडित करने से पूर्व सोचने के लिए विवश कर सकती हैं । इनके

अलावा मेरा तो एक ही दृष्टिकोण रहा है।”

“क्या ?”

“पापी से नहीं पाप से घृणा करनी चाहिए।”

“हूँ” उसके मुख से निकला और किन्हीं विचारों में खो गया ? फिर कुछ देर के बाद बोला, “कोई न कोई दृष्टिकोण तो सभी का होता है, पर उसे व्यवहार में लाने वाले कोई बिरला ही होते हैं जीवन। तुम्हीं बताओ, यदि तुम्हारे साथ ऐसा होता तो क्या...?”

रंजन वाक्य भी पूरा न कर पाया था कि मैं चीख उठा, “रंजन ! मैं व्यावहारिक बात को ही मुँह से निकालता हूँ । तुम नहीं जानते कि मैं अपंग होकर भी इसी दृष्टिकोण पर चल रहा हूँ।”

“अपंग,” सहमी हुई आवाज़ में उसने दोहराया ।

“हाँ रंजन, “मेरी जिह्वा में कुछ शिथिलता आ गई थी, “आज से दो वर्ष पूर्व किसी कर्णवश बम्बई जा रहा था ? मार्ग में रेल दुर्घटना का शिकार हो गया । बायाँ हाथ और पैर उसकी भेंट नहीं चढ़ा बल्कि मेरे चेहरे पर कुरूपता ने भी अपना साम्राज्य जमा लिया । कई मास बम्बई के सरकारी अस्पताल में कटे ? स्नेह, मि० विश्वास के साथ मुझे देखते पाई । मेरी अवस्था पर उसने दुःख भी प्रगट किया और सहानुभूति भी दिखाई । वे दोनों किसी होटल में ठहरे ? दिन भर उनका क्या कार्यक्रम रहता था, मैं नहीं जानता, हाँ संध्या समय वह मुझे मिलने आती, फलों का रस निकाल कर मुझे पिलाती।”

बीच में ही रंजन पूछ उठा, “मि० विश्वास, क्या आपके कोई सम्बन्धी होते थे ?”

“वह धोखेबाज इंसान मित्रता की आड़ में मुझे बर्बाद कर गया रंजन वास्तव में इस अवधि बीच उसने स्नेह पर अपना रंग जमा लिया था, ऐसा मुझे विश्वास है; किन्तु स्नेह के व्यवहार ने मुझे तब तक अंधेरे में रखा जब तक वह पूना से मेरी टाँग व बाँह लकड़ी की बनवाकर मंडी नहीं लौट गई । उन बनावटी अंगों से चल फिर सकता था, किन्तु

पहाड़ियों पर चढ़ने व उतरने में मुझे कष्ट सा प्रतीत होता था । इसलिए मेरा अधिकांश समय घर पर ही बीतने लगा ।”

रंजन ने पूछा, “आजीविका का क्या साधन रह गया था ?”

“स्नेह की आय मात्र । वह सरकारी प्रशिक्षण केन्द्र के बुनकरों में कार्य करती थी । वह सवेरे काम पर जाने से पूर्व मुझे भोजन करा जाती थी । इसके बाद का सारा समय किसी पुस्तक को पढ़ने में बीतता या लिखने में ? कुछ दिनों के बाद स्नेह के लौटने के समय में अनिश्चितता ने स्थान ले लिया । मेरे पूछने पर मृदु स्वर में बहाना कर देती, ‘कार्य की अधिकता है, ओवरटाइम लगा कर आई हूँ ।’ और रंजन बाबू इसकी वास्तविकता भी एक दिन खुल गई मंगलू चौधरी के द्वारा । उसने व्यास के किनारे स्नेह को मि० विश्वास के साथ रंगरलियाँ मनाते देखा था । उस समय तो मुझे बाबा की बातों पर विश्वास न आया । कारण था....”

रंजन बोल पड़ा, “मि० विश्वास पर अटूट विश्वास था तुम्हें ।”

“हाँ, पर जैसा उसका नाम था वैसा नहीं निकला वह । बाबा मुझे समझा बुझा कर स्नेह के लौटने से पूर्व ही निराहार मेरे घर से लौट गये । वह आतिथ्य सत्कार न करने का मेरे जीवन में पहला ही अवसर था ।”

मेरे कथानक में, जीवन के इस रहस्य में, रंजन मनोज की मृत्यु के दुःख को भूलता सा प्रतीत हुआ । उसने गर्म पानी लाने के लिए तुलसी को आवाज लगाई । यह कहता हुआ तुलसी वहाँ आ गया, “अभी लाता हूँ सरकार ।”

मुँह हाथ धोने से रंजन को कुछ शांति मिली । कदाचित् सवेरे से उसने भी कुछ नहीं खाया था, पूछ उठा, “खाने में कितनी देर है ?”

“सब कुछ तैयार है सरकार, गर्म गर्म पराठे सेके लाता हूँ ।” तुलसी चला गया । तदुपरान्त सब चिन्ताओं को ताक में रख कर हमने भोजन किया और घूमने के अभिप्रायः से अमीना पार्क की ओर चले गये । शरद का मौसम होने के कारण, नौ बजे विशेष चहल पहल नहीं रह गई

थी। रास्ते में रंजन एक पान वाले की दूकान पर रुक गया।

बोला, “चार बीड़े तो बाँध दे बाँके।”

“सरकार कीमा भी लगेगा क्या सब में?”

“नहीं भई, केवल दो में।”

दो बीड़े बाँध कर रंजन को पकड़ाते हुए बाँके ने विचित्र दृष्टि से मेरी ओर देखा। आशय समझ मैंने कह दिया, “इलायची खुशबू।”

मुँह से निकलने की देर थी कि दो बीड़े बंधे हुए मेरे हाथ में आ गये। कुछ दूर आगे बढ़ने पर रंजन ने पूछा, “काँफी पियोगे जीवन?”

“अभी तो खाना खाया है।”

“काँफी का मज़ा तो खाने के बाद ही है।”

इससे पूर्व मदिरा के विषय में तो ऐसा सुना गया था, पर आज रंजन से काँफी के विषय में सुना गया।

खैर, हम काँफी हाऊस में पहुँच गये। विशेष चहल पहल तो वहाँ दृष्टिगत नहीं हुई, पर चार पाँच जोड़े अवश्य बैठे हुए थे वहाँ। हमारे बैठते ही वेटर ने सेल्यूट दी। रंजन ने परिचित स्वर में कहा, “दो क्रीम काफी।” वेटर आर्डर की पूर्ति के लिए चला गया।

मैंने पूछा, “यहाँ बहुत आते हो क्या?”

“अरे साहब, यह काँफी हाऊस तो हमारा घर है, सच पूछो तो जीवन हम जैसे इंसान इन्हीं की बदौलत ज़िन्दा हैं। वृह देखो, सामने जो बेंठी है, नर्स है...”

“व्यर्थ में ही बदनाम मत करो किसी को रंजन, यहां तो सभी विवाहित सी दृष्टिगत होती हैं?”

“मेरी जान यह लखनऊ है, दिल्ली नहीं, हर चीज़ कायदे से चलती है इस नवाबी दुनिया में।”

मैं अपनी झेप को मिटाता हुआ बोला, “इसके साथ कौन है?”

“रात का राही।”

उसी क्षण वे उठ कर चलने लगे तो रंजन ने विशेष दृष्टि से उसकी

और देखा, वह मुसकरा दी।

वेटर काँफ़ी सामने रखकर पूछ उठा, “और कुछ साहब।”

“नहीं,” मैंने उत्तर दिया।

रंजन काफ़ी का घूंट भर कर बोला, “जन्नत की हूरों का मजा लखनऊ में है, दिल्ली में नहीं मेरे दोस्त। इसी लिए तो इसे छोड़ने को जी नहीं चाहता।”

“जिसे तुम जन्नत कहते हो, वह दोख है रंजन।”

तमक उठा रंजन, “जन्नत क्या है, घर के किसी कोने में बैठकर ग्राँस बहाना, जहर की पुड़िया खाकर सो जाना?”

“यह भी नहीं।”

“तो फिर क्या है?”

“चिन्ता से रहित जीवन व्यतीत करना।”

“तब हम जैसों की गुजर हो ली, इसी लिए कहता हूँ कि अपनी दार्शनिकता को बराये तक रखो।”

कह तो गया मैं, किन्तु अपने ही शब्द मुझे खोखले से प्रतीत हुए, क्या मैं अपने को कह सकता हूँ कि चिन्ता से रहित हूँ? नहीं, कोई न कोई चिन्ता, किसी न किसी रूप में मेरे अन्तर में छिपी हुई है? जलता रहता हूँ उसकी लौ में दीपक की बत्ती के समान। मेरे से अच्छा रंजन ही है, अधिक दुःख हुआ तो क्या हुआ, फिर मस्त है अपनी दुनिया में जिसे वह जन्नत कहता है, जहाँ उसकी हूरें रहती हैं।

“अरे, क्या सोचने लग गए, काँफ़ी ठंडी हो रही है, स्नेह की याद तो नहीं आ गई।”

परिहास खल उठा मुझे, “दूसरे की याती है अब वह, मुझे क्यों याद आने लगी,” स्पष्ट शब्दों में कह बैठा।

“मैं तुम्हारे स्थान पर होता तो एक-प्राध का खून कर बैठता।”

“ऐसा मैं भी कर सकता था।”

“फिर किया क्यों नहीं?”

“यह भी मेरी दार्शनिकता की कमजोरी है रंजन ! लगा हुआ पौदा मैं उखाड़ न सका, फिर उखाड़ कर करता भी क्या, उसके फूल की महक किसी न किसी को तो पहुँचती ही है ?”

रंजन चुप रहा ।

मैंने पुनः कहा, “फूल ही मेरे जीवन का कंटक बना रंजन ?”

“कैसा फूल ?”

“गुलाब का, जो उस संध्या को स्नेह के जूड़े में लगा हुआ था । संदिग्ध दृष्टि उसके चेहरे पर पड़ी, उसने नजरें चुराने की कोशिश की, पर बच न सकी । मैं पूछ उठा, “कहाँ से आ रही हो स्नेह ?”

“केन्द्र से ।”

भूठ न सुन सका मैं, भावावेश में एक चाँटा उसके गाल पर पड़ा, तिलमिला उठी वह और मेरे मुख से निकला, “विश्वास के साथ काला मुँह करके नहीं आ रही तुम ?”

यथार्थ को सुनकर वह सहम गई, क्षमा याचना करती हुई बोली, “क्षमा कर दो जीवन, अब भी मेरी आत्मा शुद्ध है ।”

इसके बाद काफी देर तक वह अश्रु दुलकाती रही ।

“और तुमने उसे क्षमा कर दिया ।”

“हाँ, रंजन प्यार दुर्बलता का ही दूसरा रूप है ।”

“तुम्हारी दार्शनिकता मेरी समझ से परे है जीवन ।”

“नहीं समझ सकोगे, यह मैं जानता हूँ रंजन । परिस्थितियों का भौका अज्ञान की उस रात में, जिसमें न चाँद चमकता है और न तारे ही दिखाई देते हैं, अलौकिक प्रकाश लेकर प्रगट होता है, ऐसा ही प्रकाश कभी मेरी दार्शनिकता को तुम तक पहुँचा देगा, विश्वास है; किन्तु स्नेह को सदमाग न दिखा सका । इसके बाद वह मेरी आँखों में घुल भौंक कर मिलती रही, जो कुछ मैं लुटा बैठा था वह उसे विश्वास से मिलता रहा । इसका पता मुझे लगा कई मास बीतने पर... उस समय तक बरसाती पानी का बहाव तेज हो चुका था, कई मासों तक पानी में भीगने के बाद

उस दिन मेरी प्रेम की दीवार किसी अज्ञात भोंके से घरा पर गिर पड़ी थी और सन्तप्त मन को शांत करने वाला कोई साधन मेरे पास नहीं रह गया था।”

“दिन ढल रहा था। भास्कर किसी लज्जित प्राणी की भाँति अपना काँति हीन मुखड़ा हिमालय श्रेणियों की झाँड़ में छिपा चुके थे। मैं सन्तप्त हृदय को शांत करने के लिए किसी शिर्वालिंग के भग्नावशेष के समीप बैठा हुआ था ? अचानक स्नेह का स्वर मेरे कानों में पड़ा, वह कह रही थी, “मि० विश्वास ! आप मुझे मन में जो चाहे समझें; मगर मैं संकोच और लोक लाज की रस्सी को तोड़ कर स्पष्ट कह रही हूँ कि मैं हृदय से आप ही की उपासना करती हूँ। मेरा हृदय क्या चाहता है, इससे मैं स्वयं अनभिज्ञ हूँ यदि कुछ समझती भी हूँ तो मरी जिह्वा कह नहीं सकती।”

“स्नेह ! यदि मैं इन शिवालियों में प्रतिष्ठित देवताओं के समान होता तो तुम्हारी उपासना से सन्तुष्ट हो जाता। पर मैं तो इच्छाओं का कीट हूँ। तुमने जो कुछ दिया है उससे सन्तुष्ट नहीं हो सकता मुझ जैसा कीट। वह और चाहता है, सब कुछ....” विश्वास ने कहा।

‘मैं तुम्हारी ही हूँ विश्वास। इस समय यह बात शुद्ध भाव एवं निष्कपट हृदय से देवी देवताओं के समक्ष कह रही हूँ, पहले तिरस्कार के लिए....’

“मेरे आशय की पुष्टि तुम्हारे इस कथन से नहीं होती स्नेह। कदाचित् तुम अभी तक उसे नहीं समझ सकती हो। मैं विहग को अपनी मुंडेर पर बैठे देखकर संतोष धारण नहीं कर सकता। उसे अपने पिंजरे में बन्द करना पसन्द करता हूँ।”

“आपका मतलब....”

“हाँ स्नेह ! मुझ जैसा सर्वभोगी केवल सुगन्धि से तृप्त नहीं हो सकता।”

“बैर्य से काम लो विश्वास।”

“तुम जीवन को छोड़ क्यों नहीं देती ?”

“इसलिए कि मैं अपंग की सेवा करना अपना धर्म समझती हूँ।”

“धर्म की आड़ एक बहाना है, तुम पाप से डरती हो।”

“नहीं, विश्वास ! मैं पाप और पुण्य को केवल मानव हृदय की उत्पत्ति ही मानती हूँ।”

“फिर काँटे को रास्ते से हटा क्यों नहीं देती ?”

“रंजन बाबू ! मैं उस समय कैसे सहन कर सका ? कौन सी शक्ति ने मेरे क्रोध को पानी के बुलबुले के समान मिटा दिया, आज तक नहीं जान पाया उसे।”

“स्नेह ने क्या उत्तर दिया ?” रंजन पूछ उठा।

वह कुछ न बोली और थोड़ी देर बाद वे दोनों मेरी आँखों से ओझल हो गये। दूसरे मार्ग से मैं भी आवास स्थान पर पहुँच गया। घर का ताला बन्द था। स्नेह अब तक नहीं लौटी है। इस बात का प्रतीक था वह ताला। मैं ताला खोल बत्ती जला शैया पर लेट गया। थकान अधिक महसूस हो रही थी। दुर्घटना के उपरांत पहली बार इतनी मंजिल तय की थी। सारी रात पलकें न भ्रम सकीं और स्नेह उस रात घर नहीं लौटी।

“रूप और यौवन के चंचल विलास के पश्चात् स्नेह कलुषित जीवन के चिह्न दर्शाने के लिए अगले दिन काम पर जाने से पूर्व आई। सदी कड़ाके की पड़ रही थी और वह अपने को ऊपर से नीचे तक ढरे हुए थी।

मैंने स्नेहसिक्त स्वर में पुकारा, “स्नेह।”

“क्या कहना चाहते हैं ?” उसके स्वर में क्षुब्धता थी और व्यवहार में अभद्रता।

इस पर भी मैंने अतीत की याद दिलाते हुए कहा, “स्नेह ! एक बार बनारस में जाह्नवी पर नौका विहार करते हुए कहा था, “वैभव सम्पन्नता में अपना पूर्व विस्मृत हो जाता है। पुराने मित्रों को भूल जाते हैं। कौन

कह सकता है कि कुछ दिनों के उपरांत तुम्हीं मुझे न भूल जाओ।”

“हाँ, मैंने उत्तर दिया था उस समय,” स्नेह ने तीखी वाणी में कहा, “यदि वैभव-सम्पन्नता में आपको भूल जाने की सम्भावना हो तो मैं उसकी ओर घ्राँख उठाकर भी न देखूँगी।”

“अब वह समय आ गया है स्नेह।”

“चाहते क्या हैं ?”

“यहाँ से कहीं दूर चलें ?”

“भूखे मरने के लिए।”

“मरना तो एक दिन सभी को है, अमरता का पट्टा कौन लिखा कर लाया है यहाँ। इतने दिन तो जी लिए, दो चार वर्ष और जिए तो क्या ?”

“आप जीवन से ऊब गये हैं इसलिए कि कदाचित् बहुत कुछ देख चुके हैं, पर मेरे तो देखने के अब दिन आये हैं, फिर मैं उनके प्रति, उदासीन क्यों बनूँ ?”

“स्नेह।”

“जीवन।”

“प्रेम के बंधन को न सही, कम से कम धर्म के बंधन को तो समझो स्नेह।”

“मैं प्रेम के बंधन से नहीं अपितु धर्म के बंधन से ही घबराती थी प्रब तक; पर आज उसे भी तोड़ रही हूँ। मुझे आप से प्रेम नहीं रहा है, कदाचित् भविष्य में हो भी न।”

“स्नेह यह तुम क्या कह रही ?”

“मैं ठीक कह रही हूँ जीवन बाबू। मैं आपसे तलाक लेना चाहती हूँ।”

— “तलाक”, मेरे मुख से निकला।

“हाँ, इसके बाद हम दोनों स्वतन्त्र हैं; एक बात और कहे देती हूँ, आप अपंग हैं, इसलिए अपनी सेवा अपना धर्म समझ कर करती

रहूँगी।”

— “तुम्हारी सरीखी नारी पर अधिक दिन तक भार बनने से मर जाना कहीं श्रेयकर है ?”

“अब तो अधिक देर बातें करने का समय नहीं है, केन्द्र से लौटकर निर्णय होगा ?” कह कर वह चली गई।

। “स्नेह के विचारों से अवगत हो चुका था। अब उसके हृदय में मेरे लिए किसी प्रकार का कोई स्थान नहीं रह गया था ? इसलिए उसकी अनुपस्थिति में कुछ रुपये और शाल लेकर नीचे उतर आया हूँ।”

तभी कॉफी हाउस की दीवार पर टंगे घंटे ने ग्यारह की ध्वनि की। बिल मदा कर हम दोनों आवास स्थान की ओर लौट आये।



जिस दिन मैं लखनऊ से लौटकर दिल्ली पहुँचा, उस दिन संध्या को तृप्ति और उसके पति डा० प्रेम को डिनर पर आमंत्रित किया हुआ था। भाभी और माँ भाँति-भाँति के व्यंजन तैयार करने में लगी हुई थीं ; किन्तु स्मृति कहीं भी दिखायी नहीं दे रही थी। क्या वह अस्वस्थ है, जोकि रसोई की तैयारी में हाथ नहीं बटा रही ? मेरा मन सोच उठा। पर किसी से पूछने का साहस नहीं हुआ मुझ में ? सहसा मेरा ध्यान राजीव पर गया। वह दीपक के साथ बैठा 'लूडो' खेल रहा था। मैंने उसे आवाज दी थी। तत्काल ही उत्तर मिला उसकी ओर से, "अभी आता हूँ पिताजी।"

तभी माँ ने उनकी ओर देखकर कहा, "सांभ हो गई, उठाकर रखो इसे, और दही ले आओ जाकर।"

"अभी जाते हैं दादी माँ," राजीव ने उत्तर दिया।

मैं ड्राइंग रूम में बैठकर पत्रिका देखने लगा। कुछ देर के बाद गाड़ी के रुकने की आवाज कान में आई। मैंने वातायन में से झाँक कर देखा। वे लोग गाड़ी में से उतर रहे थे। तत्काल ही अन्दर पहुँच कर मैंने कहा, "माँ ! वे लोग आ गये।"

"अच्छा बहू ! मैं चलो" कह कर माँ द्वार पर उन्हें लिबाने के लिए

आई। ड्राइंग रूम में बैठकर माँ ने डाक्टर साहब को सम्बोधित कर कहा, “पराई बेटी का ध्यान क्यों नहीं रखता रे, दो ही दिन में ढाँचा निकल आया ?”

डाक्टर साहब ने मुसकरा कर उत्तर दिया, “इसमें मेरा दोष क्या है ताई जी ? अब अनुरोध कर-कर के हार गये। ये कुछ खाती ही नहीं।”

“क्यों बेटी ? ऐसा करने से काम थोड़े हो चलेगा। अब यही घर तो अपना है, फिर संकोच किस बात का ?” माँ ने तृप्ति को समझाते हुए कहा।

बेचारी व्यथा से पीड़ित तृप्ति क्या कहती उन्हें ? उसने गर्दन झुका सी और चुपचाप सुनती गई।

“ताई जी ! वैसे तो डाक्टर का जीवन ही व्यस्तता से भरा रहता है और जैसे तैसे कतर बोंत कर कभी समय निकाल पाता हूँ तो ये चलने के लिये ही तैयार नहीं होतीं।”

“जुम्मा-जुम्मा आठ ही दिन तो हुए हैं इसे आये। धीरे-धीरे सब जगह आने जाने लगेगी तेरे साथ।” माँ ने सहज स्वभाव में उत्तर दिया।

अब तक मैं चुप था। तृप्ति की उदासीनता की वास्तविकता मुझ से छिपी नहीं थी। उस पर रोशनी डाल कर उसके जीवन को नरक नहीं बनाना चाहता था। इसलिए तृप्ति की ओर से वकालत करता हुआ बोला, “एक दूसरे को समझने में भी समय लगेगा डाक्टर साहब।”

उसी समय राजीव ने ड्राइंग रूम में प्रवेश कर पूछा, “क्या काम बा पिताजी ?”

मैं जिस बात को उससे पूछना चाहता था, इस समय पूछी नहीं जा सकती थी, सो कहना पड़ा, “कुछ नहीं।”

मेरा उत्तर सुनकर वह चला गया।

उसके जाने पर डाक्टर साहब ने कहा, “इस वैज्ञानिक युग में इसकी आवश्यकता नहीं पड़ती मि० जीवन्। पहली ही भेंट में विचार विनिमय

हो जाता है।”

“फिर असफल क्यों हुये ?” मैंने पूछा।

“दर असल बात यह है कि विशेष फुरस्त ही नहीं मिली।”

“तुम्हें फुरस्त मिलने लगे तो दुनिया का निस्तारा ही न हो जाये डाक्टर” भाई साहब ने कमरे में प्रवेश करते हुये कहा। उनके साथ ही बाबूजी को देख कर डाक्टर साहब ने अभिवादन स्वरूप ही कहा, “नमस्ते ताऊ जी।”

“कहो भाई, आजकल तो काम जोरों पर है।”

“जी हाँ, गुजारा हो ही जाता है।”

“आजकल तुम्हारे पिताजी ने तो अवकाश प्राप्त कर लिया होगा,” बाबूजी ने उसके समीप ही सोफे पर बैठते हुए पूछा।

“संध्या को समय देते हैं किलीनिक में, उनके मरीज मुझ से प्रभी……।

“अच्छा, अच्छा,” बाबूजी ने हँसते हुए कहा, “रामी की माँ ! देखो खाने में कितनी देर है, मुझे किसी काम से बाहर जाना है ?”

माँ उठकर चली गई खबर लेने के लिये। बाबूजी ने तृप्ति को सम्बोधित कर पूछा, “जी लग गया बेटी।”

“जी,” उसी अवस्था में तृप्ति ने उत्तर दिया।

फिर मेरी ओर मुखातिब होकर पूछा, “लखनऊ तुम्हें पसन्द आया जीवन बहुत ही बढ़िया शहर है। सम्यता और संस्कृति तो कूट-कूट कर भरी पड़ी है।”

“जी हाँ, उसके जीते जागते प्रतीक हैं मि० रंजन।”

रंजन का नाम सुनते ही तृप्ति चौंक उठी। गर्दन ऊपर उठाकर उसने मेरी ओर देखा कुछ क्षण तक और फिर झुक गई आँखों। उनमें करुणा और निराशा का सम्बन्ध था।

“रंजन क्या तुम्हारा सहपाठी रहा है ?”

“जी नहीं, जाते समय गाड़ी में ही परिचित बना। लखनऊ में मैं

उसी का अतिथि रहा। बोलने का लहजा इतना सुन्दर था कि अल्पकाल में ही पराया भी अपना हो जाये।”

“क्या करते हैं मि० रंजन ?”

“इन्हीं की बिरादरी में शामिल होने जा रहे हैं, “मैंने डाक्टर साहब की ओर संकेत कर कहा।

“डाक्टरी पढ़ रहे हैं।”

इसके उपरांत माँ के कहने पर हम सब डाइनिंग हाल में इकट्ठे हुए। सारा सामान टेबल पर सजा हुआ था। सब लोग यथा स्थान बैठ गए। इस समय भी मेरी आँखें किसी की प्रतीक्षा में थीं ? वह नहीं आई और भोजन आरम्भ हो गया। इस समय की स्मृति की अनुपस्थिति से मुझे यह निश्चय अवश्य हो गया कि वह घर में नहीं है, कदाचित् पहाड़ी चली गई हो। सभी व्यंजन रुचिकर थे। उनके लिए भाभी की पाक विद्वता की विशेष रूप से डाक्टर साहब ने प्रशंसा की। उसे सुनकर भाभी बोली, “मुझे से अच्छा तृप्ति रसोई तैयार करती होगी।” तृप्ति को बोलना पड़ा, “भाभी जी ! रसोई तैयार करने पर तो मुझे कभी अवसर नहीं मिला घर में, अपितु लोगों के शरीर में नस्तर अवश्य दिए हैं ?”

“क्या डाक्टरी पढ़ रही थी बेटी ?”

इसका उत्तर मैंने दिया, “रंजन इन्हीं का सहपाठी है।”

बाबूजी को कदाचित् कोई बात याद आ गई, हँसते हुए पूछ बैठे, “तुम भी थे क्या शहीद के मजार पर ?”

“कैसा मजार मैं समझा नहीं ?”

“अभी हाल ही में अखबार में खबर छपी थी कि मैडीकल कालेज के एक योग्य विद्यार्थी ने प्रेम की वेदी पर अपनी आहुति चढ़ा दी। उसके सहपाठियों ने उसकी स्मृति में वहाँ मजार बनाने का निश्चय किया है। सैकड़ों लोग रोजाना उस पर फूल चढ़ाने के लिए जा रहे हैं, उसके

पास ही एक पगली बंठी रहती है।”

इस सूचना को सुनकर तृप्ति का रंग कुछ फीका पड़ गया था और वह खाना भूल गई थी। मां ने उसकी अवस्था को देखकर कहा, “खाना ना बेटी, यह ससुराल नहीं, अपना घर है।”

तृप्ति ने माँ के कहने पर खाना आरम्भ किया।

कुछ देर के उपरांत किसी निश्चय पर पहुँच कर मैंने कहा, “मजार पर तो नहीं गया बाबूजी ; पर उस शहीद के विषय में सब कुछ पता दिया था रंजन ने।

तृप्ति ने विस्फारित नेत्रों से मेरी ओर देखा।

“कौन था वह ?”

“मनोज,” मेरे मुख से निकल गया।

सुनते ही तृप्ति की अजीब दशा हो गई। चम्मच हाथ से छूट कर जमीन पर गिर पड़ी और वह एक दम बेहोश होकर कुर्सी पर लुढ़क गई।

बाबू जी ने उसकी ओर देखकर कहा, “अरे, बिटिया तो बेहोश हो गई डाक्टर।”

डाक्टर और भाभी ने उसे उठा कर शैया पर लिटाया। पानी छिड़ककर उसकी बेहोशी को दूर करने का प्रयत्न किया जाने लगा। खाना लगभग समाप्ति पर ही था। सब उठ गये और तृप्ति के होश में आने की प्रतीक्षा करने लगे। दस मिनट के उपरांत उसे होश आया। उसने अपने चारों ओर देखा।

माँ ने उसे होश में आते देख पूछा, “कैसी तबीयत है बेटी ?”

“ठीक है,” उसने दबी हुई जबान में उत्तर दिया। इसके उपरांत एक घंटा आराम कर चली गई तृप्ति। बाबूजी किसी आवश्यक काम से बाहर चले गये। बच्चों की वार्षिक परीक्षा समीप थी, इस लिए वे ड्राइंग रूम में जाकर पढ़ने बैठ गये ? भाई साहब विश्राम करने के लिए अपने कमरे में चले गए। मां और भाभी नौकर द्वारा काम सिमटवाने में

लग गई और मैंने अपने कमरे में आकर नई कहानी की भूमिका तैयार की। उसके नायक और नायिका थे मनोज और तृप्ति।

राहगीर जिस प्रकार किसी विटप छाया में खिचड़ी रांध और उदर की तृप्ति के उपरांत मिट्टी की हंडिया फेंक कर अपनी मंजिल की ओर बढ़ जाता है और पीछे की ओर मुड़कर देखने की लालसा कि वह फूटी या बची, उसके मन में नहीं उठती। ठीक उसी प्रकार इस वैज्ञानिक युग में नब्बे प्रतिशत लोग सरस्वती से अपना कार्य निकाल, उसे लक्ष्मी के राज-पथ के पीछे निष्ठुर बनकर फेंक देते हैं; एक बार फिरकर देखते भी नहीं कि वह बची या खत्म हो गई; परन्तु मैं उन नब्बे प्रतिशतों में से नहीं निकला। मेरी गिनती उन दस प्रतिशतों में होने लगी। वैसे तो शुरू से ही सरस्वती के प्रति मेरी आस्था थी; परन्तु स्नेह से विमुख होने के उपरांत वह और भी बढ़ गई, मेरी पुस्तकों से भरी हुई अलमारियाँ, एक दीर्घ अवधि के उपरांत लौटने पर भी मुझे वैसे ही मिली थीं। उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता था कि उन्हें किसी ने छुआ तक नहीं? लखनऊ जाने से पूर्व किसी कारणवश हाथ न लगा सका था। इस लिए कल इन अलमारियों को और पुस्तकों को निकाल कर साफ कर देना चाहिए, यह निश्चय कर मैं नई कहानी लिखने के लिए बैठ गया।

साढ़े दस बजे के लगभग भाभी दूध लेकर आईं। मैंने दूध का गिलास लेकर कहा, “बैठो भाभी।”

भाभी बैठ गई और लिखे हुए कागजों की ओर देखकर पूछा, “क्या लिख रहे हो जीवन भैया?”

“जो कुछ लखनऊ में देखकर आया हूँ उसी को चित्रित कर रहा हूँ कहानी रूप में।”

“क्या शीर्षक रखा है इसका?”

“पंक और पंकज।”

“नाम तो सुन्दर है।”

“और कहानी भी सुन्दर होगी भाभी।”

“पूरी कर लो, तब सुनूंगी,” कहकर भाभी उठने का उपक्रम करने लगीं ।

मैंने उन्हें उठते देख, दूध का खाली गिलास देते हुए पूछा, “स्मृति क्या पिहर गई है ?”

मेरे प्रश्न को सुनकर कुछ देर तक वे शून्य की ओर देखती रहीं; फिर निःश्वास छोड़कर बोलीं, “समुराल ।”

समुराल शब्द ने मुझे आश्चर्य में डाल दिया । मैं भाभी के कंधों को हिलाते हुए बोला, “होश में तो हो भाभी ! स्मृति की समुराल तो यही है ।”

“नौ साल पहले थी, अब नहीं ।”

“पहेली न बुझाओ भाभी, साफ़ साफ़ कहो, बात क्या है ?”

“इससे भी अधिक स्पष्ट करना होगा ।”

“हाँ भाभी ।”

“स्मृति का दूसरा विवाह....”

“कब और कहाँ ?”

“जब राजीव एक वर्ष का था तब और बछराऊँ में ।”

भाभी की बात को सुनकर बाबू जी के उस पत्र का स्मरण हो आया जोकि लखनऊ जाने से पूर्व उन्हें मिला था और जिसे पढ़कर उन्होंने कहा था, “मंगलवार को बछराऊँ वाले आ रहे हैं ।” मैंने सोचा था उस समय, बछराऊँ से कौन आ रहा है, वहाँ तो अपनी कोई रिस्तेदारी नहीं ? पर अब पता लग रहा था इस नई रिस्तेदारी का, जो मेरी आशाओं को ही कुचल कर जोड़ी गई थी । स्मृति का मुझ से अलग-अलग रहने का कारण भी स्पष्ट हो गया था; जिसे मैं क्रोध समझे बैठा था वास्तविकता में वह परायापन था । स्मृति उस समय इस घर की केवल एक धरोहर स्वरूप थी ।

मैंने खिन्न स्वर में कहा, “विस्तार से सुनना चाहता हूँ सबकुछ भाभी !”

“इससे पूर्व वचन दो कि घर छोड़ कर फिर नहीं जाओगे।”

“भाभी ! अब मेरे जीवन में रह ही क्या गया है ? जो अंतिम दीपक की लौ अपने क्षीण प्रकाश में मुझे यहाँ तक ले आई थी, वह अब बुझ चुकी है, अंधकार के सिवा मुझे कुछ दिखाई नहीं देता यहाँ।”

“राजीव है, और हम सभी ।”

“राजीव ।”

“हाँ, जीवन भैया ! बाल्यावस्था से ही उसने माँ बाप का प्यार नहीं देखा। जिस दिन से तुम आये हो, वह तुम्हारी बातें करता नहीं अघाता। एक दिन जब तुम लखनऊ गये हुए थे, अपने घर आई हुई मित्र मंडली में बड़े गर्व से कह रहा था, “मेरे पिता जी ! कहानियाँ लिखते हैं, मैं भी उनसे लिखना सीखूँगा।” क्या उस सुकुमार की इस इच्छा पर भी कुठाराघात करना चाहते हो ? आज से राजीव और दीपक का भार तुम्हारे ऊपर है। उन्हें लक्ष्यसिद्धि तक पहुँचाना तुम्हारा कर्त्तव्य है।”

“भाभी ।”

“हाँ, जीवन ।”

“स्मृति सुखी है इस जीवन से ।”

“नारी के भाग्य के आगे अड़ा हुआ भारी पत्थर बड़ी कठिनाई से हटा करता है जीवन भैया ।”

“.....”

“.....”

कुछ देर के उपरांत पुनः बोलीं भाभी, “तुम्हारे बनारस जाने के कुछ दिन बाद स्मृति पहाड़ी से लौट आई। उसे तुम्हारे जाने का बड़ा ही दुःख था। वह बहुधा कहा करती थी, “दीदी अब वे कभी नहीं लौटेंगे ?”

मैं आश्वासन देती हुई कह दिया करती थी, “यह तेरा भ्रम है स्मृति, तम मिल जाने पर वह अवश्य आयेगे तुझे लेने।”

इस प्रकार कई मास बीत गये, पर तुम्हारा कोई पत्र नहीं मिला।

बाबू जी कई पत्र डाल-डाल कर थक गये। एक बार उन्होंने बनारस जाकर तुम्हें खोजने का निश्चय किया; पर अचानक किसी प्रकार की अड़चन पड़ जाने के कारण स्थगित करना पड़ा उस विचार को। उसी सप्ताह स्मृति ने राजीव को जन्म दिया।

अभी खुशियाँ पूर्ण रूप से मनायी भी नहीं गई थीं कि बनारस से एक तार आया। उस में तुम्हारे जाल्दवी में डूब जाने की बुरी खबर थी। भेजने वाला था-आनन्द। आनन्द के स्वभाव से बाबूजी भली भाँति परिचित थे, इसलिए दुःख भरी खबर को झूठी न समझ सके। सारे घर में हाहाकार मच गया। विधाता ने स्मृति को एक सहारा देकर दूसरा छीन लिया था। कितना निष्ठुर है वह ?

उसी सप्ताह आनन्द तुम्हारे कुछ कपड़े लेकर आये। उन्होंने बताया कि लाश की बड़ी खोज की गई; पर कहीं पता न चला ? इस पर भी मुझे विश्वास न आया कि तुम इस दुनिया में नहीं हो; पर स्मृति इस का दोष अपने ऊपर समझ रही थी। वह उस घड़ी को धिक्कार रही थी जब कि आपसी विचार वैमनस्य बढ़ा था, अब उससे हो क्या सकता था ? दिन प्रतिदिन अवस्था गिरने लगी उसकी और एक घड़ी वह भा गई कि राजीव को भी नहीं सँभाल सकती थी।

तुम्हारे भाई साहब से उसकी यह अवस्था नहीं देखी गई, वे एक दिन मां से बोले, “यदि स्मृति का पुनर्विवाह कर दिया जाये तो कैसा रहे ?”

मां ने कहा, “वह तैयार है क्या ?”

“अभी पूछा नहीं गया, आशा है वह तैयार हो जायेगी।”

मां की अनुमति के उपरांत बाबू जी को तैयार कर अगले ही स्मृति के पिता को बुला भेजा। जब उनके सम्मुख स्मृति के पुनर्विवाह का प्रस्ताव रखा गया तो वे चिल्लाकर बोले, “यह मेरे खानदान में नहीं हो सकता रमेन्द्र बाबू ! इसकी बुझा बालविषवा हो गई थी तो लालाजी ने उसका सिर मुँहवा कर वृन्दावन में छोड़ दिया था। इतना ही !”

है कि घर में पड़ी हुई है यह। अगर भाग्य में सुख बढ़ा होगा तो बेटे से मिल जायेगा।”

उन्हें इस बात को सुनकर क्रोध आ गया, वे बोले “विधवा विवाह न होने के कारण ही हमारी जाति का उत्थान नहीं हो रहा है। और वे बेचारी अबलायें शैतानों के पंजे में फँस कर अपने ब्रह्मचर्य को खंडित कर देती हैं। फिर समाज के भय से उन्हें घर से बहिष्कृत होना पड़ता है। वे उस निस्सहाय अवस्था में ऐसे पथ का अनुसरण करती हैं, जिससे वही समाज के ठेकेदार जो कि उन्हें बहिष्कृत कर चुके थे। उनकी पद-धूलिका मस्तक पर लगाने के लिए उनके समीप आकर बैठते हैं, उनके तलुवे सहलाते हैं और आलिंगन करने के लिए वेचैन हो उठते हैं।”

इतना सुनते ही स्मृति के पिता तिलमिला उठे, उठते हुए बोले, “मैं तो स्मृति को आपको सौंप चुका हूँ, जो इच्छा हो कीजिए उसका, पर इतना याद रहे कि आज से उसके लिए मेरा द्वार बंद है।”

इसके बाद वे चले गये। उन्हें रोकने का साहस बाबूजी में भी न हुआ। स्मृति मेरे साथ ही द्वार के समीप खड़े होकर पिता के विचारों से अवगत हो चुकी थी। उसने मुझ से कहा, “दीदी ! भाई साहब को मना कर दीजिए कि वे मेरी चिन्ता न करें, भाग्यहीन को कहीं सुख नहीं मिल सकता ?”

कमरे से बाहर आते हुए उन्होंने स्मृति के शब्दों को सुन लिया था, बोले, “जीवन में सुख दुःख भाग्य पर नहीं श्रम पर आश्रित होता है स्मृति। फिर तुम ने अभी देखा ही क्या है जीवन में, खिलने से पहले ही मुरझा गया ? तुम्हारा फूल सा चेहरा वैधव्य की ताप में झुलसा हुआ नहीं देख सकता।”

“भाई साहब, “सिसक उठी स्मृति।

“रोने धोने और धुल-धुल कर मरने का ही नाम जीवन नहीं, जीवन है सुख शांति का नाम। तुम इस बात से निश्चित रहो स्मृति कि विवाह

के उपरांत तुम्हारा इस घर से सदैव के लिए नाता टूट जायेगा, कदापि नहीं, यहाँ के द्वार तुम्हारे लिए हमेशा खुले हुए हैं।”

इस प्रकार ढाढ़स बंधाकर उन्होंने एक विज्ञापन ‘नवभारत टाइम्स’ में निकलवा दिया। थोड़े ही दिनों में उसके द्वारा पत्र व्यवहार होने लगा। कितने ही चित्र ना पसंद किए उन्होंने। अंत में बछराऊँ में सम्बन्ध पक्का कर दिया। दीवाली के उपरांत हृदयेश कुमार स्मृति को व्याह कर ले गये। यहाँ से लड़की के समान उसे बिदा किया गया। सारे आभूषण व कपड़े उसे दे दिए गये।”

मैंने शांत भाव से पूछा, “हृदयेशजी ! क्या करते हैं ?”

“घर के ज़मींदार हैं, शहरों में भी व्यापार चलता है, सुधारकवादी विचारों के व्यक्ति हैं, गतवर्ष उनकी माँ का स्वर्गवास हो गया है। अब स्मृति के सिवाय सगे सम्बन्धियों में कोई नहीं रहा है, दूर नातेदारी का मुझे पता नहीं।”

“इसका मतलब है कि वहाँ किसी प्रकार का कष्ट नहीं होगा। स्मृति को ?”

“उसने कभी इस विषय में कुछ कहा नहीं ?”

“मेरी सूचना तो हृदयेशजी को मिल गई होगी।”

“हाँ, राजीव ने बता दिया था।”

“तब।”

उन्होंने मुझ से पूछा था, “भाभी जी, जीवन बाबू कहाँ हैं ?”

“कौन जीवन बाबू ?” मैंने पर्दा डालने के विचार से पूछा था।

वे हँसकर बोले, “राजीव के पिता।”

“लखनऊ गये हैं।”

“जब आयें तो उनसे कहना कि वे बछराऊँ आयें कुछ दिन के लिए।”

इससे ही हृदयेशजी के विशाल हृदय का मुझे परिचय मिल गया था, कुछ देर शांत रह कर मैंने कहा, “भाभी ! इंसान सोचता कुछ है और होता कुछ है।”

“ठीक कहते हो जीवन भैया; पर एक बात पूछूँ।”

“पूछिए।”

“स्नेह का क्या हुआ ?”

पहले तो मैं स्नेह का नाम सुनकर भौंचक्का सा रह गया फिर कुछ क्षण उपरांत मुझे ध्यान आया कि मैंने ही सब कुछ उसके विषय में भाभी से पहले बतला दिया था, सो कह दिया, “वह सुख से है।”

“कहाँ ?”

“मंडी में।”

“यहाँ क्यों नहीं ले आये उसे ?”

“वह थी.....।”

वाक्य पूरा न कर सका मैं। भाभी सब कुछ समझ गई थी। उठते हुए बोली, “काफी देर हो गई है जीवन भैया, सवेरे जल्दी उठना है।”

“अच्छा भाभी....।” कह कर मैंने उन्हें बिदा कर कमरे के किवाड़ भेड़ूँ दिए। सोने का उपक्रम किया, नींद नहीं आई, जीवन में एक नया मोड़ आगया, वह आशा, जो किसी अज्ञात खुशी से मन को हर्षित किए हुए थी, मिट गई, पंक और पंकज का लिखना रुक सा गया। अब अपना ही जीवन एक कहानी बन गया था, अमूठी और निराली।

कुछ देर शैया पर लेट कर मैं उठ खड़ा हुआ। सभी अल्मारियाँ किताबों की खाली कर डालीं। उन्हें साफ करते कब आँख लग गई ? इसका मुझे पता नहीं और जब उठा तो दोपहर हो चुकी थी और किताबें साफ सुथरी अवस्था में अपने स्थान पर पहुँच चुकी थीं। मेज पर भी अस्त व्यस्त रूप में पड़ा हुआ सामान नहीं था। वह भी तरीके से लगा हुआ था। मुझे आश्चर्य ही नहीं, घोर आश्चर्य हुआ। मैंने भाभी को पुकार कर पूछा, “यह सब कुछ किसने किया है भाभी ?”

भाभी ने आकर पूछा, “अच्छा नहीं हुआ क्या ?”

“अच्छे बुरे की बात नहीं है भाभी, जानना तो चाहिए कि किसकी धेरे ऊपर मेहरबानी हुई है।”

“गर्म पानी पड़ा है, पहले शौचादि से निबट लो, यह बातें बाद की हैं।”

अभी की बात को टालने का साहस मुझ में कभी नहीं हुआ था, सो अब भी नहीं हुआ, आदेशानुसार कार्य करने चला गया।

दोपहर को खाने के उपरांत पढ़ने के लिए किसी पत्रिका को लेकर बैठा ही था कि राजीव ने समीप बैठते हुए पूछा, “किताबें ठीक लगी हैं पिताजी।”

“हाँ बेटा, यह काम तुमने किया है क्या?”

“मैंने और दीपक ने।”

“तुमने व्यर्थ में ही समय खराब किया, मैं कर लेता।”

“मुझे फंली हुई किताबें बुरी लग रही थीं, दीपक साफ करता गया उन्हें, मैंने लगा दिया।”

“बड़े अच्छे बच्चे हो।”

कुछ देर चुप रह कर राजीव ने कहा, “मैं भी ले लूँ इनमें से पढ़ने के लिये पिताजी।”

“इनमें तुम्हारे मतलब की कोई पुस्तक नहीं है।”

मेरा उत्तर सुनकर राजीव का चेहरा उतर गया। उसे उदास देख कर मैंने कहा—

“आज संध्या को लेने चलेंगे बाल साहित्य, अब तुम जाकर आराम करो।”

वह खुशी-खुशी वहाँ से चला गया।

पाँच बजे के करीब चाय से निवृत्त होने पर राजीव तैयार होकर मेरे पास आ गया, बोला—

“बाजार चलिये पिताजी।”

“दीपक कहाँ है, उसे भी साथ ले लो?” मैंने कहा।

“वह बाग में चला गया है अभी-अभी।”

“तुमने उसे रोका नहीं।”

“रोका था ।”

“फिर ।”

“बोला, आज मैच है, तुम जाकर ले आओ किताबें ।”

“अच्छा चलो ।”

“आप चलिए, मैं लिस्ट ले आऊँ ।”

“लिस्ट ।”

“हाँ, मैंने तैयार की है ।”

“अच्छा, ले आओ ।”

थोड़ी ही देर में वह लिस्ट ले आया । मैंने देखा उसमें सी से अधिक पुस्तकों के नाम थे । कुछ पुस्तकों को छोड़ कर चयन अच्छा था । मैंने पुस्तकों की दूकान पर पहुँचने से पूर्व पूछा, “राजीव ! इसमें से पहले कितनी किताबें चाहिये ।”

कुछ देर सोच कर उसने उत्तर दिया, “सारी ही दिला देते तो...”

“क्या करोगे इतनी किताबों का एकदम ? फिर परीक्षाएँ भी तो सिर पर हैं ।”

“अपना पुस्तकालय खोलूँगा ।”

मैंने बच्चे की इच्छा को कुचलना अच्छा नहीं समझा और वह सूची कुछ किताबों के नाम काट कर निकालने के लिये दे दी और घर का पता देकर पहुँचाने के लिए कह दिया । वहाँ से जब घर लौटे तो वह बहुत खुश था । दोनों ने एक साथ ही भोजन किया । इसके बाद वह पढ़ने के लिये बैठ गया और मैं कहानी लिखने के लिए । दो दिन में वह कहानी पूरी हो गई । इस बीच राजीव मुझ से मिलने के लिये आया, पर मुझे कार्य में व्यस्त देख वैसे ही चला गया । कदाचित् वह अपनी नई पुस्तकों के विषय में मुझे कुछ कहना चाहता था ।”

तीसरे दिन मैंने स्वयं ही राजीव को बुलाकर पूछा, “तुम्हें पसन्द आई, किताबें ।”

“बहुत अच्छी लगीं, एक छोटी सी अलमारी की ओर संकेत कर

कहा, "इसको खाली कर लो अपनी पुस्तकों के लिये।"

"इसका सामान," उसने पूछा।

"किसी अलमारी के नीचे के खाने में रख दो?"

राजीव ने कुछ देर बाद ही उस अलमारी को खाली कर अपनी पुस्तकें उसमें रख लीं।

अगले मास मेरी कहानी 'पंक और पंकज' हिन्दी की सुप्रसिद्ध मासिक पत्रिका में छपी। उसके कुछ दिन बाद ही रंजन का पत्र मिला। जिसमें लिखा था तुम्हारी कहानी यहाँ बहुत पसन्द की गई है और उसकी कृतिंग मैंने तृप्ति के यहाँ भेज दी है। अंतिम शब्दों को पढ़कर मुझे बड़ा दुख हुआ। रंजन के ये तुच्छ विचार मुझे अच्छे नहीं लगे और उसके उत्तर में केवल इतना ही उसे लिख दिया, तुमने यह अच्छा नहीं किया।

इस घटना को छः महीने बीतने को आये, फिर रंजन का मुझे कोई पत्र नहीं मिला, कदाचित् वह मुझ से रुष्ट हो गया था; पर इस बीच हृदयेशजी के कई पत्र मेरे नाम आये, जिनमें वछराऊँ का निमन्त्रण सानुरोध दिया गया था। अंत में मैंने गर्मियों के दिनों में वछराऊँ जाने का निश्चय कर लिया। इच्छा हुई कि राजीव को भी साथ लेता चलूँ, परीक्षा परिणाम के उपरांत छुट्टियाँ होंगी ही दो मास की।

भाभी ने इंकार कर दिया कि राजीव का वहाँ ले जाना उचित नहीं है। उनकी बात मेरे समझ में आ गई।



सावन की तीज से दो दिन पूर्व रामधन नौकर के साथ तीज का सामान लेकर मैं स्मृति की ड्योढ़ी पर पहुँच ही गया। चालीस वर्षीय अघेड़ पुरुष ने मेरा स्वागत किया और आलीशान भवन की बैठक में रामधन को बैठाकर वे मुझे लेकर अन्दर पहुँचे, दूर से ही स्मृति को सम्बोधित कर बोले, “देखो कौन आये हैं स्मृति ?”

रसोई में से निकली स्मृति, मुझे आँगन में हृदयेशजी के साथ खड़े देख आश्चर्यचकित सी रह गई वह, मुँह से निकला, “आप।”

मैं भी अपनी सुघबुघ खोकर उसी की ओर देख रहा था। छः मास में ही अन्तर आ गया था स्मृति में। इस समय वह बहुत ही कमजोर और बीमार सी दिखाई देती थी। मैंने पूछा, “तुम्हें क्या हो गया है स्मृति, शायद हृदयेशजी तुम्हारी भली भाँति सम्भाल नहीं करते।”

स्मृति ने हाँ ना का कुछ उत्तर नहीं दिया।

हृदयेश जी मुझे एक कमरे में बैठाते हुए बोले, “जब से दिल्ली से आई है स्मृति, तब से कुछ खोई-खोई सी रहती है। खाना पीना भी कुछ अच्छा नहीं लगता इसे, कई बार दिल्ली के लिए कह सुन चुका हूँ, पर हाँ ही नहीं करती, पता नहीं क्या हो गया है इसे ?”

सम्भवतः स्मृति की ऐसी अवस्था मेरे ही कारण हुई हो, दिल्ली भी

मेरे कारण ही वह आना नहीं चाहती, माँ का हृदय भी कठोर कर लिया है क्या उसने ? राजीव की स्मृति क्या कभी उसे बेचैन नहीं करती होगी ? इनका समाधान था उस नारी के पास । पर उस कष्ट की प्रतिमा को देखकर मुझे ऐसा लगा कि वह इनका समाधान नहीं करना चाहती । वह हृदयेशी जी और मेरे बीच एक पहली बनकर रहना चाहती है, ऐसी पहली, जिसका कोई हल नहीं ।

थोड़ी देर बाद वह नाश्ता लेकर आई हमारे सामने । कुछ नमकीन के साथ दो तश्तरियों में गरम-गरम हलुवा था ।

हृदयेश जी ने स्मृति को सम्बोधित कर कहा, “मेहरिया के हाथ थोड़ा सा जलपान बैठक में भी भिजवा देना, रामधन बैठा है भूखा प्यासा ।”

“ओह, मैं तो यह पूछना भूल ही गई थी कि और कोई भी आया है क्या ?” इतना कह कर स्मृति रसोई घर की ओर बढ़ गई ।

“अब की बार आम अच्छा हुआ है, इसीलिए बारम्बार पत्र लिख रहा था ।”

“धन्यवाद ! कुछ लिखने-लिखाने का काम ज्यादा था, इसलिए जल्दी न आ सका ।”

“वह तो यहाँ भी हो सकता था,” हँसते हुए हृदयेश जी बोले, “अरे भई, मैं तो हलुवे की तश्तरी चट भी कर गया और आपकी वैसे ही पड़ी हुई है, क्या अच्छा नहीं लगा ?”

“ऐसी बात नहीं है, मैं तनिक सामने चित्र को देख रहा था । बड़ा ही सुन्दर बना है ।”

“आखिर स्मृति की पसन्द की चीज है ।”

इस उत्तर से मैं कुछ लजा सा गया और हलुवे को खाने में लग गया । हृदयेशजी पुनः बोले, “पिछले वर्ष नैनीताल में खरीदा था इस चित्र को ।”

“कितने का ?”

“तीन सौ का।”

“कैसा लगा वह स्थान आपको ?”

“बहुत ही बढ़िया, स्मृति को ‘चाइना पीक’ तो इतना पसन्द आया कि कई रातों तो हमने वहीं पर स्थित आवास स्थान पर गुज़ार दी।”

“वही सबसे बढ़िया जगह है।”

“आप भी गये हैं कभी ?”

“जी हाँ, दो एक बार।”

नास्ता समाप्ति पर था। हृदयेशजी बोले, “आराम करना चाहते हो, या घूमना।”

मैं कुछ कहना ही चाहता था कि स्मृति ने समीप आकर पूछा, “घर में तो सब कुशल हैं ?”

“हाँ,” मैंने उत्तर दिया।

उसकी बात करने की इच्छा को समझकर हृदयेशजी बोले, “अच्छा जीवन बाबू ! आराम करें, मैं तनिक बाहर असामियों से निबट लूँ।” उठते हुए स्मृति को सम्बोधित कर बोले, “मेहरिया से मामान भी मंगवा लिया होता।”

“मंगवा लिया है वह तो, सब्जी और भिजवा दीजिएगा।”

“अच्छा,” कह कर चले गये हृदयेशजी। मुझे उनकी प्रकृति सचि-कर लगी। कितना विशाल हृदय है इनका ? मन में शंकाओं का किंचित मात्र भी समावेश नहीं। यह जानते हुए कि मैं इनका प्रतिद्वंदी हूँ, अकेला छोड़ गये हैं मुझे स्मृति के पास। क्या यह सब कुछ वास्तविकता है या बेचारी स्मृति की परीक्षा ली जा रही है। ये सब बातें मैं एकदम सोच गया ?

“राजीब ठीक है, पास हो गया होगा,” संकुचित स्वर में प्रश्न किया स्मृति ने।

मैंने देखा, वह अभी तक किवाड़ का सहारा लिए खड़ी हुई थी, बोला, “बैठिए ! खड़ी कब तक रहेंगी ?”

“बस, ऐसे ही ठीक हूँ।”

मैंने पहले प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा, “ठीक है, प्रथम आया है इस वर्ष।”

“और दीपक।”

“केवल पास है।”

“उसका ध्यान खेल में ही लगा रहता है, इसलिए पोजीशन नहीं आई।”

“सम्भवतः ऐसा ही हो।”

“राजीव का ध्यान रखियेगा पूरा-पूरा, कदाचित् मैं अब...”

“तुम्हारा भी तो कुछ उत्तरदायित्व है उसके प्रति स्मृति।”

“मैं पराये घर की हो गई हूँ जीवन बाबू कब तक निभा सकूंगी इस उत्तरदायित्व को?”

“ऐसा न कहो स्मृति ! नारीत्व के समक्ष ममत्व को मत भुलाओ, तुम्हारे पति देवता हैं वे इस प्यार में विघ्न बनकर नहीं आयेंगे।”

जलविहीन मत्स्य की तरह तड़प उठी स्मृति। जो टीस जोक बन कर उसका खून चूस रही थी। वह हड्डियों को खोखला करने के लिए फिर से चिपक गई। वह उससे आहत सी बोली, “इसी लिए मेरा भी कुछ कर्त्तव्य हो गया है उनके प्रति।”

“मैं कर्त्तव्य से कब विमुख होने के लिए कहता हूँ?”

“ममत्व के लिए नारीत्व को भुलाना भी तो विमुख होना ही है जीवन बाबू।”

“तुम्हारा आशय नहीं समझा स्मृति।”

“कभी समझ जाओगे वह भी,” कह कर स्मृति चली गई।

मैं भी वहाँ से उठकर बाहर आ गया। हृदयेश जी असामियों से निबट कर तिजोरी बंद कर रहे थे और रामचन पास में ही गलीचे पर पड़ा सो रहा था। मुझे देखकर हंसते हुए बोले, “बड़ी जल्दी उठ गये आप।”

“जी ।”

“आइये फिर बाग की सैर करा लाऊं ।”

“चलिए ।” हम लोग कस्बे के बाहर जंगल की ओर बढ़ गए । बाग में पहुँचते पहुँचते संध्या हो गई थी, फिर भी लू का प्रभाव कम नहीं हुआ था और आकाश पर गर्द छाई हुई थी । उस समय प्रकृति रक्त से रक्त देह की भाँति शिथिल सी प्रतीत हो रही थी ।

बाग का माली गुड़गुड़ी को जमीन पर रख दीड़ता हुआ आया बोला, “सरकार हमें ही बुला लेते वहाँ, आपने क्यों तकलीफ उठाई ?”

“तकलीफ की कोई बात नहीं रमजानी मियाँ ? मेहमान आये हैं दिल्ली से । उम्दा-उम्दा फल लाकर तो खिलाओ इन्हें ।”

“अभी लाया सरकार । आप इतने खटिया पर तशरीफ रखें”, रमजानी मियाँ ने खटिया डालते हुए कहा ।

हम लोग बैठ गये और रमजानी मियाँ छोटी सी डलिया उठाकर बाग के अन्दर चला गया । अब भी काफी फल लदा पड़ा था । थोड़ी ही देर में वह दस बारह दाने तोड़ कर लाया और उन्हें कुँए के पानी से धोकर हमारे सामने रख दिया । काटने के लिए सदियों पुराना उसने चाकू भी दे दिया ।

ग्राम खाने पर उसका स्वाद बड़ा ही रुचिकर लगा । उसकी सुगन्धि और जायका विशेष ही था । ऐसा कभी दिल्ली में खाने को नहीं मिला था । उसके विषय में मैंने पूछा, “क्या सभी पेड़ों पर ग्राम ऐसा ही है ?”

“नहीं जीवन बाबू, इसके पाँच पौधे विशेष रूप से बम्बई से मंगाए गए थे । इनके अलावा सारे बाग का ठेका रमजानी के पास है इसका फल मैंने कभी नहीं बेचा । मित्र मंडली के लिए ही पूरे नहीं होते ।”

“बहुत ही बढ़िया स्वाद है इनका ।”

“अब का बार वर्षा काफी नहीं हुई है वरना इसके खाने में कुछ और ही लुत्फ होता ।”

“और लाऊं सरकार”, रमजानी ने आकर पूछा ।

“अब नहीं सवेरे हवेली पर भिजवा देना बीस-पच्चीस दाने ।”

“अच्छा हज़ूर ।”

इसके बाद कस्बे को भली भाँति देखते हुए हवेली में पहुँचे । मेहरिया ने कुँए से ताज़ा पानी खेंच दिया । स्नान करने में मज़ा आ गया । भोजन तैयार था । दोनों ने एक साथ ही किया ।

हृदयेश जी विनोद प्रिय थे, परिहासत्मक स्वर में बोले, “आज तो स्मृति तुमने सब्जी बनाने में कमाल ही कर दिया, पेट भरने को आया पर इच्छा नहीं भरी ।”

“क्या इससे पूर्व कभी ऐसी नहीं बनी ?” स्मृति ने पूछा ।

“ख़याल तो नहीं पड़ता ।”

“इसमें आप का दोष नहीं, आपकी जाति का है, जो भूल बड़ी जल्दी जाती है ।”

“उस जाति में तो मैं भी हूँ ।”

“आप भी क्या इन से कम हैं ?”

इस प्रकार हँसी खुशी में खाना समाप्त हुआ ।

मेहरिया ने तीन चारपाई आँगन में बिछा दी । हृदयेश जी खाना खाकर बाहर चले गए और दो चार चक्कर आँगन के लगाकर कोने वाली शैया पर लेट गया मैं । थोड़ी देर के बाद आँख लग गई ।

ग्यारह बजे के समीप स्मृति ने दूध का गिलास लिए हुए कहा, “उठिए ।”

“क्या है ?” मैं नींद में ही बोल उठा ।

“दूध पी लीजिए ।”

मैं उठकर बैठ गया । अभी तक पास की दोनों चारपाइयाँ खाली थीं । दूध पीते हुए मैंने पूछा, “हृदयेश जी अभी नहीं लौटे क्या ?”

“जी नहीं ।”

“क्या हमेशा ऐसे ही देर में आते हैं मैंने रिस्टबाच की ओर देखते

हुए पृष्ठा ।

“आज ही इतनी देर हुई है ।”

“आज ही....” मेरे मुख से निकला ।

दूध पीकर गिलास देते हुए मैंने कहा, “गमियों में माँ ने बड़ी इन्त-
ज़ार देखी तुम्हारी ।”

“अवश्य देखी होगी, निकलना ही नहीं हुआ घर से, पहले माँजी
थीं तो हो आती थी कुछ दिन उनके पास, अब तो एक पल के लिये भी
निकलना भारी हो गया है ।”

“मैं कुछ और ही समझा था ।”

“क्या समझे थे ?”

“मेरे कारण....”

“ऐसी बात नहीं है जीवन बाबू, जो आपको यहाँ बुला सकते हैं,
वह मुझे वहाँ भी भेज सकते हैं । वह आपको छोटा भाई समझते हैं ।”

और कोई प्रश्न न कर सका मैं ? हृदयेशजी के विषय में सोचता-
सोचता सो गया । वे कब लौटे बाहर से, और कब चले गये सैर को
सवेरे ? इसका मुझे ज्ञान न हो सका । उस दिन मेरा अघिकांक्ष समय
उन्हीं के साथ बीता । असामियों के साथ उनका कैसा व्यवहार है, कस्बे
में उनकी कैसी शाख है, इससे मैं अवगत हो गया ?

अगले रोज तीज थी । आँगन में नीम के पेड़ में झूला डाल दिया गया
था । दोपहर तक माँ के द्वारा भेजी गई सौगात को देखने के लिए आस-
पास की औरतों का ताँता बंधा रहा । उसके बाद आस-पास की औरतों
का झूलना और गाना शुरू हुआ । यह क्रम संध्या तक चलता रहा ।
संध्या को कपड़े आदि समेट कर स्मृति ने रख दिए और मिठाई तथा
फल इत्यादि आस-पास पड़ोस में भाजी के रूप में मेहरिया से बँटवा
दिये ।

मैं कमरे में लेटा हुआ उनके हास-परिहास का आनन्द लेता रहा ।
किसी ने मुझे देखकर स्मृति से प्रश्न कर दिया, “वे कौन हैं ?”

दूसरी ने प्रश्न किया, “दिल्ली वाले हैं क्या ?”

क्या उत्तर दे उन्हें, वह कौन हैं ? असमंजस में पड़ गई स्मृति । वह सोच रही थी, जेठ को तो उसने भाई के रूप में स्वीकार कर लिया था, क्या उससे भी ऐसा सम्बन्ध स्थापित कर सकेगी, जिसके साथ एक बार अग्नि की परिक्रमा कर चुकी है, और परिस्थितियों ने उससे दूर पटक दिया है । हृदय ने कहा, “ऐसा नहीं हो सकता ।”

मन ने प्रश्न दिया, “फिर क्या होगा ? जीवन के प्रति इसका क्या कर्तव्य है ?

हृदय खामोश रहा । उसके पास इसका कोई उत्तर नहीं था ? बाहर से हृदयेश जी आते हुये दिखाई दिये । “लो, वे आ गये तुम्हारे”, कहते हुये वे दोनों अन्य सखियों के साथ अपने-अपने घरों को लौट गईं । इस प्रकार स्मृति उनके प्रश्नों के उत्तर की दुविधा से बच सकी ।

उधर मैं पड़ा-पड़ा शैया पर सोच रहा था कि मेरी उपस्थिति किसी न किसी रूप में स्मृति को दुविधा में डाले रखती है, क्यों न दिल्ली ही लौटा जाये ? वह अब पराई है, मेरा उसके साथ क्या सम्बन्ध रह गया है ? फिर मन भी तो चलायमान होता है, न जाने कब और किस परिस्थिति में वह बेकाबू हो जाये और स्मृति के मन में मेरे प्रति न जाने कंसी-कंसी भावनाओं का संचार हो उठे । इन सबसे अच्छा है कि कल ही यहाँ से विदा ले लूं ।

“क्या सोच रहे हो जीवन बाबू ?” हृदयेशजी ने कुर्सी पर बैठते हुये पूछा—

“घर लौटने का कार्यक्रम बना रहा हूँ ।”

“इतनी जल्दी ।”

“काम बहुत पड़ा हुआ है वहाँ ।”

उन्होंने तत्काल ही स्मृति को आवाज लगाते हुये कहा, “जीवन बाबू मागना चाहते हैं यहाँ से कल । तुम्हीं रोक सकती हो अब इन्हें । मेरी बात तो ये सुनते ही नहीं ।”

स्मृति गर्दन झुकाये खड़ी रही कुछ देर, फिर बोली, “इनका कहना मान लीजिये जीवन बावू ।”

उस दिन के बाद मैंने तो जाने के बारे में स्मृति और हृदयेश जी से कोई जिक्र नहीं किया ; किन्तु रामघन को वापस भेज दिया अगले दिन । उनका आतिथ्य ग्रहण करते हुये मुझे एक पखवाड़ा बीतने को आया । इस बीच मैंने अपने आपको स्मृति से जहाँ तक हो सका दूर ही रखने का प्रयत्न किया; किन्तु एक रात को मलेरिया ने घर दबाया मुझे और दिनों दिन मेरी दशा खराब हो चली । उन दोनों का अधिकांश समय मेरी सेवा में बीतता । स्मृति ने दिल्ली में मेरी बीमारी की सूचना देने के लिये कहा । मैंने हृदयेशजी को इसके लिये मना कर दिया बड़ी अनुनय के साथ । वे बेचारे मान गये । कस्बे में अच्छा डाक्टर नहीं था । मुझे देखने आने के लिये मुरादाबाद से एक सुप्रसिद्ध डाक्टर का प्रबन्ध किया गया । उनका नाम था डा० चक्रवर्ती । इनके इलाज में एक मास बीत गया । स्मृति ने मेरी देख भाल में रात दिन एक कर दिया था । फल-स्वरूप मैं धीरे-धीरे स्वस्थ होने लगा ।

संध्या का समय था । हृदयेशजी कहीं बाहर गये हुये थे । स्मृति मेरे लिये लौकी की सब्जी और सूजी की पतली-पतली दो रोटियाँ लेकर आई । मेरा जायका अभी तक पूर्णरूप से ठीक नहीं हुआ था, बड़ी मुश्किल से एक फुलका खा सका । रोटी की इच्छा न समझ कर उसने कहा, “थोड़ा सा दूध ले लीजिये ।” बीमारी के समय में दूध अच्छा नहीं लगता था; किन्तु गर्म दवाओं के खाने के कारण स्मृति जबरदस्ती पिलाया करती थी । इसलिये मैंने कहा, “उसकी भी इच्छा नहीं है अभी ।”

“आप कुछ भी नहीं लेंगे तो स्वस्थ कैसे होंगे ?”

“स्वस्थ होकर ही क्या करूँगा स्मृति । तुमने व्यर्थ में ही मौत के मुँह से मुझे खींच लिया ।”

इतना सुनकर उसकी आँखें भर आईं और टप-टप आँसू आने लगे । नीचे की ओर दृष्टि किए हुए वह स्थिर होकर बैठी रही, कुछ देर के बाद

रुंधे हुए कंठ से बोली, “राजीव के लिए ही...।”

“बच्चे को पिता से अधिक माँ की जरूरत होती है स्मृति।”

“जानती हूँ।”

“इसीलिए उसे फेंक, घर बसा लिया तुमने।”

“ऐसा तीखा प्रहार मत कीजिए मुझ पर।”

“यह कटु सत्य है, प्रहार नहीं।”

“मेरी कभी भी पुनर्विवाह की इच्छा नहीं थी; किन्तु भाई साहब ने...।”

“राजीव को भी साथ ले आतीं।”

“माँ जी ने नहीं लाने दिया। आप नहीं जानते जीवन बाबू कि संतान को छोड़ कर आने में माँ के प्राणों पर कैसी बीतती है?”

इसके बाद वह उठकर चली गई और मैं किन्हीं विचारों में खो गया। एक सप्ताह में स्वस्थ हो गया मैं। दिल्ली छोड़ने के लिए स्वयं मेरे साथ हृदयेश जी आये और उसी संध्या को वापस भी लौट गये।

बछराऊँ से लौटने के उपरांत मेरा अधिकांश समय अपने ही कमरे में लेखन कार्य में बीत जाता। कार्य के आधिक्य और चिन्ता ने मेरे शरीर में एक प्रकार की धुन लगा दी। मुश्किल से दो सप्ताह भी न हुए थे कि सर्दी, जुकाम, खाँसी, बुखार, एक न एक लगा ही रहता। डाक्टर के कहने पर बाबूजी ने मुझे हवा बदलने के लिए नैनीताल भेज दिया। इस बार माँ और रामधन भी मेरे साथ गये। मुझे स्वस्थ रखने के लिए माँ ने अपने आभूषणों की आहुति दे दी। सात सौ रुपये साल पर चार कमरों का फ्लेट, सीतापुर आई हॉस्पिटल के सामने बहराम कोटेज में मिल गया।

नैनीताल आकर मुझे आराम होने लगा। क्रॉसवेट हॉस्पिटल के इंचार्ज डा० दास गुप्ता का इलाज चला। ऐसा काम, जिसका शरीर पर अधिक जोर पड़े, या ऐसी ऊँची नीची जगहों पर, जहाँ पर जाने से थकान महसूस हो, मना कर दिया। अधिकांश समय तो छज्जे पर बैठे-

बैठे ही कट जाता। वहाँ से नैनीताल का दृश्य बड़ा ही मनोरम दिखाई देता था। कभी-कभी मौसम खुला होने पर चहलकदमी के लिए निकल जाता या लेकसाइड में चाय पीने के लिए बैठ जाता।

रोटी बनाने से लेकर बाजार का सब सामान लाने का काम रामधन करता था और उससे जो कुछ समय बच जाता उसमें वह तकली से ऊन काता करता था और माँ कहीं न जाकर संघ्या को नैनी देवी के दर्शन करने अवश्य जाती या कभी-कभी गीता भवन में प्रवचन सुनने के लिए। इससे अधिक वे नैनीताल नहीं घूमीं।

डा० दास गुप्ता की दवा की अपेक्षा हिदायतों ने मुझे जल्दी आराम पहुँचाया। कुछ ही मासों में पूर्णतया स्वस्थ हो गया। मेरे स्वस्थ होने की सूचना पत्र द्वारा दिल्ली भेज दी गई और बछराव भी।

दिसम्बर के अन्त में स्नोफॉल देखने के लिए दिल्ली से सारा परिवार आया। स्मृति को भी इस आशय का पत्र लिखा गया; पर न तो उसका कोई उत्तर ही मिला और न ही वह स्वयं आई।

कुछ दिन रह कर सब वापस लौट गये दिल्ली राजीव और दीपक की इच्छा नैनीताल रहने की थी; किन्तु पढ़ाई के कारण उन्हें भी जाना पड़ा। हाँ, गर्मी की छुट्टियों में बुलाने का आश्वासन अवश्य दे दिया गया।



गत वर्ष सावन मास में मैं तीज की सौगात लेकर स्मृति के घर गया था, आज फिर वही सावन मास आ गया है मौनसून काफी पहले से यहाँ अपना प्रकोप दिखा रही हैं। कई-कई दिन तक भास्कर देव के दर्शन नहीं हो पाते हैं। इस बार राजीव और दीपक भी यहाँ नहीं आ सके। वे स्कूल की ओर से एक्जैकशनल टूर में गये हुए हैं। इस बार बछराऊँ कोन गया है, इसका पता नहीं लग पाया है, अक्सर रामघन जाया करता था, वह भी इस वर्ष मेरे पास ही है। सहसा इस बात का स्मरण आते ही मेरा ध्यान क्षण भर के लिए पुस्तक पर से हट गया और मुँह उठाकर शून्य दृष्टि से छज्जे में से ताल की ओर देखने लगा। प्रभी-अभी वर्षा होकर चुकी थी। म्यूनिसिपल लायब्रेरी वालों की पालतू बत्तखें विशेष समूह रूप में सामने तैर रही थीं और माँ नैनीदेवी के दर्शन करके नहीं लौटी थीं। वे वहाँ जाकर क्या प्रार्थना करती हैं, क्या वरदान उस देवी से मांगती हैं, आज तक वे मुझसे न कह सकी थीं। इतने में ही रामघन ने आकर कहा, “सरकार ! तार आया है।”

मैंने देखा कि डाकिया सीढ़ियों में ही खड़ा हुआ है। वह तार का लेफाफा हाथ में देकर, दस्तखत लेकर और नमस्कार करके चल दिया।

मुझे तार पढ़कर बड़ा आश्चर्य हुआ। स्मृति ने सूचना दी थी कि

वह नैनीताल के लिए रवाना हो गई है, अन्तिम बस से वह नैनीताल पहुंच जायेगी। किस लिए आ रही है इस बेकार के मौसम में, सिवाय घर में बैठे रहने के और कुछ नहीं? यहाँ की वर्षा निकलने ही नहीं देती बाहर, साथ में कौन है, हृदयेश जी भी हैं या नहीं? आना ही था तो तार की आवश्यकता क्या थी? एक पत्र से काम चल सकता था? पता नहीं क्या सोच कर किया है उसने ऐसा?

सात बज चुके थे। वर्षा के कारण आज संध्या जल्दी आ गई थी। मैंने रामधन को बस स्टेण्ड पर जाने के लिए कह दिया। साढ़े आठ से पूर्व ही स्मृति घर आ गई। साथ में एक अटैची के सिवा और कुछ नहीं था।

स्मृति को देखते ही मैं ऊपर से नीचे तक काँप उठा और बोला, “यह पगलियों का सा वेष बनाकर क्यों आई हो स्मृति?”

स्मृति ने विशेष दृष्टि से मेरी ओर देखकर कहा, “अन्दर चलो, बताऊंगी।” अन्दर जाकर स्थिरता से बैठकर उसने पूछा, “मां जी! कहाँ हैं?”

“नैनी देवी तक गई हैं।”

“जीवन बाबू। विघाता के चक्र का कुछ पता नहीं चलता। गत वर्ष इन्हीं दिनों मैं आप मेरे यहाँ थे और इस वर्ष मैं आप के यहाँ।”

मेरी समझ में कुछ नहीं आया, कह दिया, “यह तो तुम्हारा घर है।”

“यही सोचकर आई हूँ कि मां जी और आप की भी कुछ सेवा करूँ।”

मैं असमंजस में पड़ गया। सोचा स्मृति हृदयेशजी से लड़कर चली आई है। वास्तविकता को जानने के लिए मैंने पूछा, “हृदयेशजी! क्यों नहीं आये?”

“उन्हें जरूरी लम्बी यात्रा पर जाना पड़ गया अचानक ही।”

“कहाँ गये हैं?”

“जहाँ से कोई नहीं लौटता ? मेरी सफेद धोती देखकर भी कुछ नहीं सोच पा रहे । परसों तेरहवीं बगैरह सब क्रिया-कर्म हो चुकने पर आज यहाँ चली आई हूँ ।”

मैं सुन्नसा बैठा रहा । कुछ देर बाद अपने को सम्हाल कर बोला, “कोई खबर तक नहीं दी तुमने, क्या हुआ था उन्हें ?”

स्मृति ने कहा, “पिछले से पिछले रविवार के दिन संध्या को हैजे के लक्षण दिखाई दिए, कस्बे में जितने इलाज किए जा सकते थे उतने किए; किन्तु किसी से भी कुछ नहीं हुआ ? अगले दिन आठ बजे उन्होंने प्राण छोड़ दिए ।”

मैंने कुछ देर उपरांत आँख बचाकर अश्रु पोछ डाले । कुछ ही दिनों की मुलाकात ने मुझे अपना हितैषी बना लिया था । वह देव तुल्य इंसान इतनी जल्दी उठ जायेगा इस दुनिया से, विश्वास नहीं होता था इस बात का । मैंने कहाँ, “मां सुनेंगी तो...।”

“रोने घोने के सिवा और हो ही क्या सकता है जीवन बाबू ? सब लोगों ने मिलकर विधाता के विरुद्ध षडयंत्र रचा था, उसकी बनाई हुई किस्मत को बदलना चाहते थे, वे कैसे सहन कर सकते थे कि उन्हीं की सृष्टि का मामूली इंसान उनकी शक्ति को चुनौती दे, मैंने भाई साहब को कितना कहा था ? दीदी से अनुनय विनय की थी कि इस फटी किस्मत में पेबन्द न लगाओ, पर तब मेरी किसी ने एक न सुनी ? पेबन्द लगी किस्मत कब तक साथ दे सकती थी मेरा ? अब रोना और हाय हाय...।”

“हवेली और सब कुछ किस पर छोड़ आई हो ?”

“पैसे वाले की आँख मुँदते ही कितने रिश्तेदार ऐसे निकल आते हैं जैसे मीठे की सुगन्ध पाकर चीटियों का भुण्ड ? जिनकी उनकी जीवितावस्था में शकल भी नहीं देखी थी, पता नहीं कहाँ से खबर पाकर हवेली में इकट्ठे होने लगे ? किसी ने अपने को मौसी बताया, कोई ताई कह बंठी और हाय भैया ! कहकर हवेली को सिर पर उठा

लिया किसी ने। यही हाल पुरुषों का था। कोई भाई, कोई चाचा और कोई ताऊ बतलाता था अपने को ? उन सब में तेज निकला एक ही, वह था जितेन्द्र...।”

“जितेन्द्र कौन है ?”

“वही, जो भाई कहता था, तेरहवीं के बाद सब को बाहर निकाल खड़ा किया और मुझ से बोला, “भाभी ! निश्चिन्तता के साथ रहो यहाँ, जब तक मैं हूँ, कोई फटकने भी न पायेगा। पर, मेरा मन नहीं लगा वहाँ, सारी हवेली काटने को दौड़ती, मुनीम जी और जितेन्द्र के सहारे सब कुछ छोड़ आई हूँ वहाँ।”

“सब कुछ, “मैंने आश्चर्य से पूछा।

“हाँ, जीवन बाबू ! सब कुछ, उनके घर का एक तिनका भी अपने साथ नहीं लाई, अपना ही सब कुछ ले आई हूँ, बस...।”

मां नैनी देवी के दर्शन कर लौट आई थीं, स्मृति को देख पूछ बैठीं, “आने से पहले चिट्ठी न पत्री, अरे ! तूने यह दशा कैसी बना रखी है ?”

“विधाता के साथ युद्ध किया था ना तुम सब ने, उसी में ऐसी हालत हो गई है माँ।”

“मेरी बच्ची, “स्मृति से लिपट कर रो पड़ी मां।

वह रात रोने घोने में ही कटी। पड़ोसियों ने भी सहानुभूति दिखाई। किसी से कुछ खाया पिया न गया ? रसोई वैसे ही पड़ी रह गई।

अगले दिन स्मृति जब स्नान घर में गई हुई थी तो मां ने मेरे समीप बैठकर सिर पर हाथ फेरते हुए पूछा, “एक बात मुझे सच-सच बता जीवन; स्मृति को वैसा ही प्यार कर सकेगा जैसा कि पहले...।”

मैंने उत्तर दिया, “उसकी चिन्ता मत करो माँ, मेरे जीते जी उसे कोई कष्ट नहीं होगा।”

“मुझे तुझ पर विश्वास है बेटा। जो कुछ कलंक उस बेचारी के माथे पर लगा है, उसकी जिम्मेवार मैं ही हूँ। मैंने अपने हृदय के विरुद्ध रामी को हाँ की थी। तेरे चेहरे की तरफ देखते ही छाती के

भीतर हाहाकार मच जाता है। दुनिया सौतेली माँ की कहानियाँ पढ़ा करती है, अक्सर छपा करते हैं; किन्तु मैं उस सौतेली माँ से भी बढ़ कर तेरी दुश्मन हूँ बेटी। मैं कितनी बड़ी अपराधिन हूँ जीवन, मेरे सिवा इसे कोई नहीं जानता ?” कहकर माँ रोने लगीं।

“रो मत माँ ! सुख दुःख ही तो जीवन के वास्तविक खेल हैं।”

स्नानगृह में स्नानगृह से निकली स्मृति। गीले केश उसकी पीठ पर पड़े हुए थे। उसका चेहरा फीका और आँखें नीरस सी दृष्टिगत होती थीं, मानों भाग्य के साथ-साथ उसकी सौम्यता भी चुरा ली गई हो।

माँ ने स्मृति की ओर देखते हुए कहा, “आज मुझ से मारे लज्जा और वेदना के, तेरे चेहरे की ओर देखा नहीं जाता बेटी।”

स्मृति ने आँसुओं को पीकर करुण स्वर में कहा, “ऐसा न कहो माँ ! मेरे भाग्य में जो था, सो हुआ, आपने तो मेरे दुःख को दूर करने की ही कोशिश की थी।”

माँ ने रोते हुए कहा, “कोशिश...। छी ! छी ! बेटी। भाग्य तो तेरा जैसा इस देश में किसी भी लड़की का नहीं था। उसी के प्रताप से तो मेरा बेटा लौट आया; किन्तु मैं उसके बीच विघ्न बनकर न आती तो तेरे माथे पर कलंक न लगता, मेरे घर के चूल्हे से गीली लकड़ियों का धुँआ नहीं निकलता, सब कुछ समझती हूँ स्मृति। इसी से तो इस वेदना को रखने के लिए कोई स्थान खोजकर भी नहीं पा सकती। अनजाने में जो पाप हो जाता है उसका प्रायश्चित्त है; किन्तु जान बूझकर जो किया जाता उसे कैसे मिटाया जा सकता है बेटी।”

माँ की आँखों से बड़े-बड़े अश्रु दुलक कर गिरने लगे। स्मृति ने अपने आँचल में उन्हें समेट लिया बोली, “किस चीज से तुम्हारी वेदना दूर हो सकती है माँ, मुझे बताओ वही करूंगी मैं, कभी तुम्हारी बात नहीं टाली ?”

मैं वहाँ से उठकर स्नानादि के लिए चला गया। माँ और स्मृति के बीच और क्या क्या बातें हुई, मैं उन्हें न सुन सका। एक सप्ताह

बीत गया ।

अगले सप्ताह भैया माँ को लेने के लिए आ गये । भाभी दूसरे शिशु को जन्म देने वाली थीं । स्मृति के इस आकस्मिक दुःख से उन्हें भी बड़ी व्यथा पहुँची । वे उसे ढाढस देकर माँ के साथ दिल्ली लौट गये ।

माँ के चले जाने के बाद से ही स्मृति के रहन-सहन में आश्चर्य-जनक सा परिवर्तन आ गया । समीप रहते हुए भी वह स्वयं को न जाने किस सुदूर अन्तराल के अन्दर की ओर ढकेलती हुई बढ़ने लगी दिनों-दिन । मैं इस परिवर्तन को देखकर भी शांतित्व सहन करता रहा ।

एक दिन वह मेरे साथ गीता भवन गई । एक घंटा बैठकर वह पंडित जी के व्याख्यान को सुनती रही । वहाँ से चलने पर मैंने उससे कहा, “आओ पाषाण देवी की ओर ही हो आयेँ ।”

“नहीं जीवन बाबू घर ही चलिए अब ।”

शेडीओ के पास आकर पूछा उसने, “धार्मिक पुस्तकें हैं क्या घर में ?”

“यहाँ तो केवल रामायण ही है और चाहिए तो ले लेते हैं ।”

माल पर ही पुस्तकों की बड़ी दूकान थी एक । स्मृति वहाँ तक मेरे साथ गई । महाभारत के अतिरिक्त विशेष पुस्तक नहीं मिली । घर आ कर उपनिषदों को टीका सहित और गीता के लिए दिल्ली के प्रसिद्ध पुस्तक विक्रेता को पत्र लिख दिया । अगले ही सप्ताह वी० पी० द्वारा वे पुस्तकें पहुँच गईं ?

सुबह और शाम गीता भवन में जाती स्मृति और खाने सोने के प्रतिरिक्त का समय रामायण, महाभारत, गीता एवं उपनिषदों में बीत जाता । संसार से उसे विरक्ति कैसे हो गई, धर्म के अन्दर कौन सा उसे सुख मिलने लगा ? श्वेत परिधान फिर उसके शरीर पर नहीं देखे गये । कान और हाथों को टॉपस और चूड़ियों से खाली नहीं रखा उसने; किन्तु वैधव्य की ओर सभी कठोरताओं का श्रद्धा के साथ पालन करने लगी वह ।

कभी कभी मेरे पास थोड़ी देर बैठकर, किसी कार्य का बहाना लगा कर उठ जाती, मानो मेरा सामिप्य उसे भयभीत किए रहता हो। यह बात उसके अनायास ही त्रस्त होकर उठ जाने से इतनी स्पष्ट हो जाती कि मैं चकित हो, बहुत देर तक शून्य दृष्टि से ताल के गहरे जल को देखता हुआ स्तब्ध सा बैठा रह जाता।

दिन बीतते गये और उन्हीं के साथ-साथ स्मृति के आचार-विचार सुदृढ़ आकार धारण करने लगे। जिस प्रकार कोई जेल का पदाधिकारी जेल के अन्दर घेरे पर घेरा डाल कर बंदियों के आयतन को छोटा करता चला जाता है, स्मृति, ठीक उसी प्रकार बड़ी चेतनता से मानो अपने घटवासी किसी एक गहरे अपराधी के चलने फिरने के अवकाश को दिन रात संकीर्णता में बदलने लग गई।

एक दिन संध्या समय छज्जे में बैठा किसी नई कहानी का प्लॉट सोच रहा था कि रामधन ने हर्षित स्वर में आकर कहा, “सरकार खुशियाँ मनाइये, बड़ी सरकार के लड़का हुआ है।”

“दीपक का भाई हुआ है।” मैंने पूछा।

“हाँ, सरकार”, कहकर उसने पोस्ट कार्ड मेरे हाथ में दे दिया।

अन्दर बैठी हुई स्मृति भगवद् गीता में से पढ़ रही थी—

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।

हर्षामर्षमयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः॥

असक्तिरनभिष्वङ्ग पुत्रदारगृहादिषु।

नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु॥

मैं पत्र को पढ़कर सोचने लग गया था। गीता के इन दो श्लोकों के विषय में। कितना रहस्य भरा पड़ा था इनमें, जिससे कोई भी जीव उद्वेग को प्राप्त नहीं होता है और जो स्वयं भी किसी जीव से उद्वेग को प्राप्त नहीं होता है और जो हर्ष, क्रोध, भय और उद्वेगादिकों से रहित है, वह भक्त मेरा है।

और पुत्र, पुत्री, घर और घनादि में आसक्ति का अभाव और ममता

का न होना तथा प्रिय, अप्रिय की प्राप्ति में सदैव ही मन का सम रहना अर्थात् मनके अनुकूल तथा प्रतिकूल के प्राप्त होने पर हर्ष, शोकादि विकारों का न होना ही श्रेयस्कर है ।

मैं कुछ क्षण गीता के रहस्य में डूबा रहा । रामधन ने आकर कहा, “सरकार ! मैं प्रसाद चढ़ाने जा रहा हूँ ।”

“प्रसाद कहाँ ?”

“पाषाण देवी पर उसने मेरी साध पूरी कर दी है सरकार, दिल्ली जाकर लल्ला को खिलाऊँगा ।”

“अच्छा जाओ...।”

कितनी खुशी थी इस पुराने सेवक को अपने नन्हें मालिक के आने पर...मैंने स्मृति को पुकार कर कहा, “दीपक के भाई हुआ है स्मृति ।”

उसने गीता पाठ बंद कर पास आकर कहा, “नन्हें आत्मा के प्रति शुभ आशीर्वाद लिख भेजो मेरी ओर से भी ।”

“बस ।”

“ओर क्या चाहते हैं आप ?”

“मुँह मीठा करने नहीं चलोगी मामू की दुकान तक ।”

“मेरी इन स्वादिष्ट व्यंजनों में रुचि नहीं रही है जीवन बाबू, इसलिये आप...।”

“क्या तुम्हें नवजात शिशु की खुशी नहीं ?”

“मैंने हर्ष, क्रोध, भयादि उद्वेगों से मन को हटाकर कान्हा की भक्ति में लगा दिया है ।”

“स्मृति...।”

“इन उद्वेगों और मोह ममता को त्याग कर ही उनकी शरण में पहुँच सकती हैं जीवन बाबू ।”

रामधन प्रसाद चढ़ा कर लौट आया था । मैंने तार द्वारा दिल्ली नवजात शिशु के लिए आशीर्वाद भेजने के लिये रामधन को तारघर भेज दिया ।

उसके चले जाने पर स्मृति ने कहा, “जीवन बाबू ! अब मुझे मंत्र सेना ही होगा ।”

मैंने उसके चेहरे के भावों को पढ़ते हुए पूछा “कैसा मंत्र, स्मृति ?”
“गुरुमंत्र ।”

मेरे होठों पर हास्य रेखा अंकित हो गई, उसी अवस्था में मैंने कहा “स्मृति ! अब तुम्हें आत्म रक्षा के लिए नित्य नये-नये कवच पहनने की आवश्यकता न पड़ेगी ।”

कदाचित् वह मेरे आशय को न समझ सकी, मेरे चेहरे की ओर देखती हुई बोली, “क्या कहा आपने, गुरु मंत्र की आवश्यकता नहीं ?”

“हाँ स्मृति, तुम्हारी अवस्था इस योग्य नहीं ।”

और कोई प्रश्न उसने नहीं किया, वह उठकर चली गई और मैं कमरे में आकर शैया पर लेट गया । मेरी आँख लग गई ।

“जीवन बाबू ।”

“क्या है स्मृति ?” मैंने करवट बदल कर पूछा ।

“खाना खा लीजिये, आज रसोई मैंने ही तैयार की है”, मैं उठ बैठा, आश्चर्यचकित सा सोचता रह गया । जिस नारी के मुख से कुछ क्षण पूर्व विरक्ति के भाव सुने हों, उसका किसी के प्रति कुछ ध्यान रह सकता है, गार्हस्थ्य के प्रति जागृत रह सकती है उसकी चेतना, मैं समझ न पाया स्मृति के मन के भावों को, उसके उद्गारों को ।

“क्या सोचने लग गये आप ?” उसने थाली को मेज पर रखते हुए कहा ।

“कुछ नहीं, रामधन तैयार कर लेता रसोई, व्यर्थ मैं ही तुमने कष्ट उठाया ।”

“सेवा करना भी तो धर्म है, सो उसी धर्म का पालन कर रही हूँ जीवन बाबू ।”

अब स्पष्ट हो गया था । उसने मोह ममता वश मेरे लिये कुछ नहीं किया, वह केवल धर्म समझ कर ही लाई थी । मैं खाने के लिये

बैठ गया। ऐसा खाना कई मास से नहीं मिला था। उसमें मीठे और नमकीन दोनों का ही समावेश था।

मैंने पूछा, “तुम नहीं खाओगी क्या ?”

“खालूँगी मैं भी”, इतना कह कर वह एक थाली में जो अपना खाना लेकर आई, उसे देखकर मेरा हृदय रो उठा, मन को शुद्ध रखने के लिये कितना शुद्ध भोजन बनाया था उसने अपने लिये। लौकी की सब्जी और बिना चुपड़े चार फुलके ?

हम दोनों एक ही नौका के दो पतवार थे; परन्तु खेने वाला उसमें भिन्नता ला रहा था ठीक विधाता ही की भाँति ? मुझ से विशेष न खाया गया थाली छोड़कर उठ बैठा।

“यह क्या, आपने तो कुछ खाया ही नहीं ?”

“इससे अधिक भूख नहीं है।”

एक दो कौर खाकर उसने भी थाली सरका दी, बोली, “मैं जिस पथ का अनुसरण कर रही हूँ, क्या वह ठीक नहीं ?”

“इस विषय में तो मुझ से अधिक तुम स्वयं जान सकती हो स्मृति। यदि उसके अनुसरण में आनन्द एवं शांति मिलती हो, तो निश्चय ही वह ठीक है।”

“ये दोनों तो नहीं मिल पाते।”

मेरी आँखें बरबस डबडबा आईं, मैंने उन्हें बड़ी कठिनाई से रोक कर आर्द्र स्वर में कहा—

“फिर अनुसरण करती ही क्यों हो ?”

“नहीं जानती जीवन बाबू ! कौन सी शक्ति मुझे अनुसरण करने के लिए प्रेरित करती है, ऐसा लगता है कोई मुझे उस पथ की ओर खींचे लिये जा रहा है, और मैं अपने को रोकने में असमर्थ समझ रही हूँ।”

बिना कहे सुने ही वह उठकर चली गई। आधी से अधिक रात का० और क० ६

करवटें बदलते बीती। मैं उठा दूसरे कमरे की ओर बढ़ गया। स्मृति शैया पर लेटी हुई थी। हरे रंग का मद्धम प्रकाश कमरे में छाया हुआ था। उसके सम्मुख पहुँचते ही अपना संयम, विचार और मानसिक स्थिति सब की सब बालू की दीवार की भाँति पैर पड़ते ही खिसकते मालूम पड़ने लगे। वह भी जाग रही थी, कदाचित् सो न सकी थी। उसकी आँखें मेरी ओर उठ गईं, जिह्वा कुछ कहना चाहती थी पर शांत रही; किन्तु उसकी दृष्टि में प्रतीक्षा न थी, उत्सुकता न थी, भय था, विकलता थी और अशान्ति भी। जिस भावना ने उसे बरसों अश्रु दुलकाने के लिए विवश किया था। जो उसे बरबस यहाँ तक ले आई थी। जिसके सामिप्य ने भक्ति की तरणि में ऐसा सुराख कर दिया था जो कभी भी उसे उड़ेल सकता था, उसी को सामने देखकर वह कातर हो उठी थी।

“केवल एक बात पूछने आया हूँ स्मृति।”

“क्या ?”

“हृदयेशजी को तुम प्यार करती थीं।”

“लेशमात्र भी नहीं। यह बात मेरे मन में कभी उठी ही नहीं। हाँ, कर्त्तव्य अवश्य पूरा किया उनके प्रति भी। अब उससे भी छुट्टी मिल गई। वहाँ की एक पैसे या एक कौड़ी की वस्तु भी अपने साथ नहीं लाई। उनका दिया हुआ एक वस्त्र भी शरीर पर धारण कर नहीं आई, हाँ खाया अवश्य उनका, सोचती हूँ मेरे कर्त्तव्य के समक्ष वह भी नगण्य है। ऐसा ही मेरा उनके साथ सम्बन्ध था।”

“क्या वे इतने से ही सन्तुष्ट थे ?”

“वास्तव में उन्होंने मेरे साथ विवाह वासना की तृप्ति के लिए नहीं, माँ के कथन की आड़ में अपने आदर्श की पूर्ति करने के लिए किया था।”

“आदर्श की पूर्ति।”

“हाँ, जीवन बाबू ! उनका सारा जीवन जनता की सेवा और उसकी कुरीतियों को दूर करने में ही बीता है। वह इंसान नहीं युग

पुरुष थे, जिन्होंने पत्नी को आदर्श नारी के रूप में समझा और दूसरे की सन्तान के भविष्य में ही अपने भविष्य को आँकते रहे।”

“क्या राजीव...?”

“रात दिन, उसी के लिए वे भविष्य के स्वप्न संजोया करते थे, न जाने क्या-क्या इच्छायें थीं उनकी, सब अधूरी रह गईं...”।”

मैं स्तब्ध सा खड़ा रह गया। सहसा मेरे मुख से निकला, “स्मृति ! मैंने पहले तुम्हें समझने में बड़ी भूल की थी ? क्या उस भूल का प्रायश्चित्त नहीं ?”

“नहीं।”

“क्यों ?”

“मिलन असम्भव है।”

“मेरे लिए असम्भव शब्द का कोई अस्तित्व नहीं।”

“पर मेरे लिए है।”

“स्मृति,” रात्रि की नीरवता में मैं चीख उठा।

मेरी चीख को सुनकर स्मृति कुछ घबरा सी गई। कुछ देर के बाद संयत स्वर में बोली, “फल कर्माधीन हैं, न जाने हम दोनों के ये कर्म कहाँ पहुँचा दें ? कदाचित् मैं दूसरे जन्म में इन कर्म दोषों के कारण यशु योनि पाऊँ और आप फिर किसी उच्च कुल में जन्म लें ? तब तुम मुझे कैसे पा सकोगे ? यदि कर्मफल सच भी है तो पति-पत्नी का चिर सम्बन्ध किसी प्रकार भी सच नहीं हो सकता ? हमारे बीच यह काल्पनिक सम्बन्ध बहुत ही तुच्छ है। कर्मों के फल का, प्रेम का, कोई भी प्राकर्षण मिटा नहीं सकता जीवन बाबू।”

मैं बहुत देर तक चुपचाप भाव तरंगों में डुबकी लगाता रहा, फिर धीरे-धीरे बोला, “फिर कोई मिलन का रास्ता नहीं ?”

“नहीं, जीवन बाबू ! इस सांसारिक मिलन से तो यही अच्छा है कि उस मिलन की इच्छा की जाये जो सबसे बड़ा है, सीमा और अवधि से रहित है और जिसका सामिप्य ग्रहण करने के उपरांत किसी के पास

जाने की इच्छा बलवती नहीं होती ।”

“स्मृति ! यह कोरी दार्शनिकता है ।”

“जो कुछ भी समझिये, आप यहाँ से चले जाइये ।”

मैं अपने कमरे में वापस आ गया । किवाड़ बन्द होने की आवाज मेरे कानों में पड़ी । ऐसा लगा कि थाली परोस कर मानो मेरे सामने से उठा ली गई हो ।

मेरा हृदय मुझे धिक्कारने लगा और उसी के साथ ऐसा अनुभव हुआ कि चिर दिनों का सुअवसर मेरे ही नेत्रों के सामने से बहाया गया है, हाथ बढ़ाकर वह उसे पकड़ने में भी असमर्थ रहा ।

उधर स्मृति सोच रही थी कि आज का व्यवहार अच्छा नहीं हुआ । उसे इतना स्पष्ट नहीं कहना चाहिए था ? कहीं यही पताड़ना उनके लिए हलाहल न बन जाये ? अगर ऐसा हुआ तो क्या करेगी वह ? वह मुझे प्यार करते हैं । भूल का प्रायश्चित्त करने के लिए भी तैयार हैं । कदाचित् विधाता ने हृदयेशजी को उठाकर हमारे बीच की दीवार को साफ कर दिया हो ? कितना स्पष्ट कह गये थे वे आकर ? पर हत-भागिन ! उनके मुँह से साफ सुनकर भी प्रताड़ना के सिवाय प्रेम के दो शब्द भी न कह सकी । अवसर आने पर भी हृदय की ओर से उन्हें इलाज न मिल सका ।

इसी उलझन में सबेरा हो गया । दोनों में से कोई भी न सो सका ।

स्मृति नित्य की भाँति स्नानादि से निवृत्त होकर जप में लग गई और मैं चाय के उपरांत ही कागज काले करने के लिए बैठ गया । जो कुछ लिखना चाहता था, वह लिखा नहीं जाता था । रात की घटना रह-रह कर मन को उद्विग्न किए हुए थी । मैंने समाधान हेतु रामधन को, स्मृति को बुलाने के लिए कहा । उसने तत्काल ही लौटकर कहा, “बहूजी ! जप कर रही हूँ ।”

लगभग एक घंटे के उपरांत स्मृति ने मेरे कमरे में आकर पूछा,

“मुझे बुलाया था क्या ?”

“हाँ, तनिक बैठो ।”

“पर अभी तो मेरा जप पूरा नहीं हुआ ।”

“घंटे भर में भी जप पूरा नहीं हुआ ।”

“एक घंटे में क्या होता है ? स्वामी जी कहते हैं कम से कम एक हजार जप करना चाहिए ।”

“कौन स्वामी जी ?”

“गीता का भाष्य करने वाले । बड़े पहुँचे हुए सन्यासी हैं । हरिद्वार में बहुत बड़ा आश्रम है उनका । कितनी सौम्यता है उनके चेहरे पर ? दर्शन करने के उपरांत फिर दुनियादारी के भ्रमों में आने की इच्छा नहीं होती । कल जा रहे हैं यहाँ से, पता नहीं फिर कब दर्शन होंगे उनके ?”

“फिर आज गईं नहीं उनके पास ।”

“जप पूरा करके जाऊँगी जीवन बाबू, कदाचित् संध्या से पूर्व न लौट सकूँ ।”

मेरी बात मन में ही रह गई, उसे कहने का उसने अवसर ही नहीं दिया और उठकर चली गई ।

लगभग दो घंटे के उपरांत मैंने स्मृति को जाते हुए अवश्य देखा; पर कहा कुछ नहीं । उसके जाने के उपरांत खाना खाकर लेट गया । सारी रात जग कर कटी थी, खुमारी चढ़ी जा रही थी । सो भाँखें बंद करलीं ।

जिस समय नींद टूटी, संध्या हो चुकी थी । वर्षा काफी जोरों पर थी । चाय पीकर मैं फिर लेट गया । देह कुछ-कुछ टूटी हुई प्रतीत हो रही थी और सिर भारी था । रामधन ने बत्ती जलाने के लिए पूछा, मैंने इंकार कर दिया, झंझकार मुझे अच्छा लगता था; क्योंकि जीवन में उसी का आधिपत्य था ।

लगभग आठ बजे वर्षा रुक जाने के उपरांत स्मृति लौटी । द्वार पर

से ही मेरे कमरे में झंघेरा देखकर उसने खोर से पुकारा, “रामचन ! इस कमरे में बत्ती क्यों नहीं जलाई ?”

उत्तर मुझे देना पड़ा, “मैंने मना कर दिया था ।”

उसने स्विच ऑन कर दिया और मेरे माथे पर हाथ रख कर बोली, “आपको तो ज्वर है जीवन बाबू । सवेरे क्यों नहीं बताया मुझे ?”

“जप में विघ्न पड़ जाता इस लिए ।”

वह रूझासी होकर बोली, “आप का स्वास्थ्य मेरे जप से बढ़ कर है ।”

“फिर बचन दो कि हमेशा मेरे साथ रहोगी ।”

स्मृति कुछ देर चुप रह कर बोली, “मुझे साथ रखने से लाभ क्या होगा जीवन बाबू ?”

“लाभ,” इसके आगे मुझ से कुछ न कहा गया, मैं चुप हो गया । वर्षा फिर पड़ने लगी थी । उसकी बड़ी-बड़ी बूंदें खिड़की की चौखट पर पड़ रही थीं । यकायक हवा का तीव्र भोंका आया और वर्षा का पानी सारे कमरे में फैला गया । स्मृति ने उठकर खिड़की बंद कर दी ।

मैं बचपन से ही आत्मभिमानी और संयमी था । जिस घंटे पर यथार्थ का बांध बंध चुका था, उसकी नींव में हृदयेशजी की मृत्यु उसी दिन से चूहे की तरह बराबर बिल खोदती आ रही थी और उन में जीवन सरिता का पानी घुस-घुस कर लम्बे-लम्बे दरार बनाता चला जा रहा था । कब और किस समय वह सारे का सारा ढह जायेगा, इसका कुछ भी निश्चित न था ? उन्मत्त बाह्य प्रकृति की ओर देखकर मैंने आरम्भ से लेकर अन्त तक सारी बातों पर दृष्टिपात करना चाहा; किन्तु ज्वरग्रस्त देह और मस्तिष्क ने कोई भी बात परिष्कृत रूप में न समझने दी ।

स्मृति सहसा बोल उठी, “चुप क्यों हो गये जीवन बाबू ? क्या कुछ और...?”

“कुछ नहीं, कुछ नहीं स्मृति, वह बात तुम्हारे समझने की नहीं है, तुम उसे समझ भी न सको...। हाँ, यदि किसी दिन तुम्हारी विचार

धारा बदले और तब तक मैं जीवित रहूँ तो...।”

“मैं सब समझती हूँ जीवन बाबू । आप मेरे सिद्धान्तों का गला घोटना चाहते हैं ।”

मुझे क्रोध आ गया, आवेश में बोला, “सोच समझ कर बात करो स्मृति ।”

स्मृति भी तुनक कर बोली, “समझ कर ही कह रही हूँ जीवन बाबू ! आप जो घुमा फिरा कर कहना चाहते हैं, वही मैं स्पष्ट शब्दों में आपके सम्मुख कहती हूँ । आप बारम्बार मुझे नरक में खींचने की चेष्टा करते हैं । यदि मेरे से ऐसा ही लगाव था, मैं ही यदि जीवन का अवलम्ब थी तो छोड़ कर क्यों गये थे ? अब, अब मुझे आप का कुछ नहीं चाहिए । यहाँ से मेरे लिए बछराऊँ अच्छा है । दो रोटी तो किसी प्रकार पेट में पड़ ही जायगी ।”

मेरा क्रोध एक दम ठंडा हो गया । मैंने क्षमा याचना करते हुए कहा, “क्षमा कर दो स्मृति । ज्वर की गर्मी ने मुझे पागल बना दिया है ।”

“मैं किसी को क्या क्षमा कर सकती हूँ जीवन बाबू ? हाँ, कल अवश्य वहीं लौट जाऊँगी, जहाँ से दम्भ के कारण यहाँ चली आई थी और जैसे बनेगा वहीं पड़ी रहूँगी, वहीं मेरा वैकुण्ठ है ।”

अगले दिन स्मृति चली गई । रामधन उसे मोटर पर बैठा आया मुरादाबाद की, और मैं छज्जे में वैसा ही सीधा बैठा रहा, जैसे बिजली का मारा ताड़ वृक्ष । उसी प्रकार, जिस प्रकार अन्दर से जला हुआ कबन्ध खड़ा रहता है । मुझ में पड़े रहने की शक्ति भी उसी की तरह न रही हो ।



फिर सावन की हरियाली तीज आई । इस बार भी गतवर्षों की तरह नीम के छोटे तने में झूल डाली गई; किन्तु कोई भी उस पर झूलने के लिए नहीं आया ? कारण न समझ सकी वह । क्या मेंहदी के छूटने से ही सब खुशियाँ छूट जाती हैं, सब संग साथी आँखें फेर लेते हैं ? विधाता के इस विधान को वह गर्विता न समझ सकी ।

वह सवेरे स्नानादि से निवृत्त हो, खिड़की के पास खड़ी होकर पूर्व की अरुण रक्त छटा को निहार रही थी । मौहल्ले में ही कहीं हरियाली तीज गाई जा रही थी । उसका स्वर पावस की सम्पूर्ण करुणा के साथ मिलकर उसके सारे शरीर में धीरे-धीरे संचारित हो रहा था । अज्ञात दशा में उसके नेत्रों से अश्रु बहने लगे । कितने दिन हो गये, उसे राजीव और जीवन बाबू की कोई सूचना नहीं मिली । उसका हृदय व्यथित हो उठा । मन ही मन वह सोच उठी, 'कौन जाने, वे कहाँ हैं और कैसे हैं ?'

नैनीताल से लौटने से पूर्व कहा था, "स्मृति जाने वाले को कोई रोक नहीं सकता, पर नाराज होकर मत जाओ ।"

तब तो इन शब्दों की कीमत उसने नहीं समझी थी । वह उस दिन रोगी अवस्था में उन्हें छोड़ आई थी । सीढ़ियों पर उसके पैर रखते ही उन्होंने कहा था, "स्मृति ! सम्भव है कि तुम्हारा यह व्यवहार सदैव के

लिए तुम्हारे ही हृदय में शूल की भाँति चुभता रहे । यह सब कुछ अपने लिए नहीं कह रहा हूँ, तुम्हारे स्वयं के लिए कह रहा हूँ, आज भर के लिए वापस आ जाओ स्मृति ।”

इसके उत्तर में वह नीचे उतरती चली गई थी ।

सोचते-सोचते स्मृति अपनी शैया पर आकर पड़ रही और बहुत देर तक रोते-रोते उसने अपने सारे केशों को भिगो लिया । अंत में उसे नींद आगई ।

इतना दुःख करने का एक और भी कारण बन गया था । जितेन्द्र ने बैंक में रख आने के बहाने उससे सारे आभूषण भी ले लिए थे और बाद में ऐसी आँख फेरी थी कि पैसे-पैसे के लिए उसे तरसा दिया था । वह स्वयं शहरों में जा जाकर सुरा और सुन्दरी के पीछे हृदयेश जी की सम्पत्ति को ठिकाने लगा रहा था । दोनों मुनीम उसके इशारों पर क्या नाच रहे थे ? इस नये मालिक की आँखों में धूल झोंक कर अपना घर पूरा कर रहे थे । इस बात की चर्चा किसी न किसी रूप में मेहरिया के मुँह से उसके कानों में पड़ जाती थी ?

वह असहाय अबला थी कर भी तो कुछ नहीं सकती थी ।

एक दिन मेहरिया ने आकर कहा था, “बहू जी आपकी बच्ची के हाथ पीले करने हैं, कुछ आपकी ओर से मदद हो जाती ।”

सुनकर उसने कहा था, “तू तो जानती है मेहरिया । इस घर में उनकी आँख मुंदते ही दूध की मक्खी की तरह निकाल फेंक दी गई हूँ । पीछे हरिद्वार आश्रम में भेजने के लिए इक्यावन रुपये मंगाये थे तेरे हाथ । दोनों मुनीमों ने क्या कह कर टाल दिया था याद नहीं तुझे ?”

“याद है बहू जी उन्होंने कहा था, कि बिना छोटे सरकार के हुकम से हम एक पैसा भी नहीं दे सकते ।”

“अब तू ही सोच ले । छोटे सरकार मुरादाबाद बैठे हुए रंगरलियों में मस्त हैं । वे दस की जगह हजार लुटा सकते हैं, मगर मैं शुभ कार्य के लिए पचास रुपये भी कहीं नहीं भेज सकती ? मैं ही अभागिन थी मेहरिया

उन्होंने कितनी ही बार वसीयतनामा लिखने के लिए कहा था, पर मैं ही इन्कार करती रही, मुझे क्या पता था कि वे इतनी जल्दी दुनिया से किनारा कर जायेंगे ? अभी एक बरसी भी तो नहीं बीती है... और मैं कीट के समान एक ओर फेंक दी गई हूँ ।”

“आप रामेश्वरदास जी से क्यों नहीं कहती ? आपकी बिरादरी के सरपंच हैं । मालिक के सामने यहीं तो पड़े रहते थे ।”

“घर की बात बाहर चली जायेगी मेहरिया ।”

“अब कौन सी रह गई है बहू जी ?”

“आज संध्या को उन्हें बुला लाना हवेली में, उनसे भी कह कर देख लेती हैं ।”

मेहरिया उन्हें कहने के लिए चली गई थी ।

संध्या समय रामेश्वरदास जी ने हवेली में प्रवेश कर पूछा, “बहू मुझे बुलाया था तुमने ।”

“हाँ, लालाजी”, स्मृति ने किवाड़ की ओट में खड़े होकर कहा ।

“क्या काम आ पड़ा मुझ से ?”

“जितेन्द्र बाबू के विषय में तो आप सब कुछ जानते ही हैं, मुझे एक-एक पैसे के लिए तरसा रखा है ।”

“इस अवस्था में तुम्हें पैसे की क्या आवश्यकता है बहू, मुझे समझ में नहीं आता । हाँ, खाने पहनने में किसी बात की उन्होंने दिक्कत कर रखी हो तो मैं कुछ कहूँ भी ?” जाते हुए बोले रामेश्वरदास जी, “तुम्हारा पहला घर भी तो हरा भरा हो गया है, वही क्यों नहीं चली जाती ।” वह स्तब्ध खड़ी सुनती रही सब कुछ । रामेश्वरदास जी जैसे आये थे वैसे चले गये ।

कुछ देर के उपरान्त मेहरिया ने जल से भरे घड़ों को रखते हुए पूछा, “क्या कहा लाला जी ने ?”

“वही ढाक के तीन पात ! मेहरिया तुझे कितने रुपयों की जरूरत है ?”

“हमारी ओछी जात ठहरी बहू जी। हमारे यहाँ शादी-ग्याह में सम्बा चौड़ा खर्चा नहीं होता। दो सौ रुपये में काम चल जायेगा।”

“बस।”

“हाँ बहूजी, हम लोगों के लिए इतना ही बहुत है।”

“अच्छा सुन, रुपये तो मेरे पास नहीं हैं, सोने की चार चूड़ियाँ बची पड़ी हैं, उन्हें ले जाकर अपना काम चला ले।”

“बहूजी ! मैं ऐसा...।”

“पगली कहीं की ! अब सोना मेरे लिए किस काम का ? न जाने ये भी कैसे रह गई’, उस समय चली जातीं तो शराब के ठिकाने लग गई होतीं, अब कम से कम मेरी बच्ची के काम तो आयेंगी।”

मेहरिया ने चूड़ियों को एक पल्ले में बाँध लिया और बाहर जाने लगी। उसे जाता देख स्मृति ने कहा, “इनका जिक्र कहीं जबान पर न आये मेहरिया।”

इसी प्रकार दिन बीत गये। फिर स्मृति ने पैसे के लिए मुनीमों के आगे हाथ नहीं फैलाया। तीज से अगले दिन जितेन्द्र मुरादाबाद से लौट आये और हवेली में अन्दर जाकर स्मृति से बोले, “भैया की बरसी करीब है ? बताओ उसके लिए क्या-क्या इन्तजाम किया जाये ?”

“मैं क्या जानूँ जो उचित समझो करो ?”

फिर जितेन्द्र ने स्मृति से बरसी के विषय में कुछ नहीं पूछा। सब कार्य अपनी इच्छानुसार ही किया। कौन-कौन ब्राह्मण जीमने आये, क्या-क्या दक्षिणा उन्हें दी गई, इसको जानने की भी स्मृति ने चेष्टा नहीं की ? हाँ, उसने अपने व्रत का पालन करते हुए इतना अवश्य किया कि उस दिन निर आहार रही। बरसी के दो दिन पश्चात् मेहरिया द्वारा उसे पता चला कि मालिक के नाम पर एक कुइयाँ खुदवाई जा रही है। उसने सोचा लाखों की सम्पत्ति छोड़ने वाले के नाम पर कोई स्कूल नहीं धर्मशाला नहीं, सिर्फ एक कुइयाँ ही बनवाई जा रही है। ऐसा भी न करायेँ जितेन्द्र बाबू तो इन्हें कोई पूछने वाला नहीं, वे स्वर्ग से कहने

नहीं आयेंगे कि तुमने मेरे नाम पर कुछ क्यों नहीं किया ? सोचते-सोचते सो गई वह ।

संध्या समय आँख खुली तो उसने देखा कि जितेन्द्र बाबू घटंकी लेकर जाने की तैयारी में हैं । वह तेजी से उनके सामने जाकर बोली, “मुरादाबाद जा रहे हैं क्या ?”

“हाँ भाभी ।”

“कब लौटना होगा ?”

“दो चार दिन में आ जाऊँगा ।”

“क्या कुछ काम है ?”

“हाँ, केवल इतना ही कि एक जहर की पुड़िया लेते आना ।”

“जहर की पुड़िया, यह क्या कह रही हो भाभी ?”

“ठीक कह रही हूँ जितेन्द्र भैया, फिर तुम्हें कोई कहने सुनने वाला नहीं रह जायेगा, आराम से देखना बहारें ।”

“भाभी मुझ से तुम्हें कोई कष्ट पहुँचा है ?”

“कष्ट... इससे बढ़कर मेरे लिए कष्ट और क्या होगा जितेन्द्र भैया कि लाखों कि स्वामिनी होते हुए मेरे नौकर ही मेरा तिरस्कार करें ।”

“तिरस्कार... किसने किया भाभी ?”

“तुम्हारे मुनीमों ने ।”

“मुनीमों ने ...।”

“हाँ, उन्होंने, मेरे माँगने पर क्या वे लोग इक्यावन रुपये भी नहीं दे सकते थे ? तुम्हारे भैया के सामने हजारों के लिए भी किसी की इजाजत की ज़रूरत नहीं थी, आँख मुँदते ही पचास रूपली के लिए तुम्हारा नाम लेकर टाल दिया गया मुझे ।”

कुछ देर सोचने के उपरांत जितेन्द्र बाबू ने कहा, “ठीक किया उन्होंने, तुम्हें सिर्फ खाने-पहनने का हक है, नकदी के रूप में एक कौड़ी भी नहीं पा सकतीं ?”

स्मृति सहन न कर सकी । जितेन्द्र के अंतिम शब्दों ने उसके लिए शूल का काम किया । वह ग्राह्त शेरनी की भाँति गर्जकर बोली, “क्या हक है, और क्या नहीं, यह मैं खूब जानती हूँ जितेन्द्र भैया । तुम्हारे साथ धन-सम्पत्ति के लिए झगड़ा मोल लेने की किंचितमात्र भी इच्छा नहीं है; पर मुझे अभी इतना बेबस मत समझो । इच्छा हो तो तुम दे दो कुछ, अन्यथा कहे देती हूँ तुम्हारे से, पैसे का ही यदि बल हो तो, शत्रुता मोल लेकर भी मैं इस हवेली की एक-एक ईंट उखड़वाकर गंगा में फिकवा दूंगी । उस समय तुम्हारा मुखिया भी साथ नहीं दे सकेगा ।”

जितेन्द्र बाबू निरुत्तरावस्था में अटैची उठाकर चले गये । उनके जाने के कुछ देर बाद ही रुपये मुनीम जी द्वारा आ पहुँचे; पर उन्हें स्मृति ने स्वीकार नहीं किया; कोपावेश में आँगन में फेंक दिया उन्हें और कमरे का द्वार भेड़कर पड़ रही । उस रात कुछ खाया पिया नहीं, उठी तक नहीं, सारी रात हवेली का भव्य द्वार खुला पड़ा रहा, अब उसे चोरी चोरी का भय नहीं था, होता भी क्यों, उसका अब वहाँ रहा ही क्या गया था ? वह भीतर शंका पर पड़ी किसी को स्मरण कर रोने लगी ।

अगले दिन सवेरे सूर्योदय होने पर उसकी आँख खुली । नहा धोकर पूजा पाठ करने बैठी ही थी कि मेहरिया ने आकर खबर दी, “दिल्ली से रामधन आया है बहूजी ।”

वह अभी कह ही रही थी कि रामधन ने उसके पास आकर कहा, “राम राम बहूजी”, स्मृति रामधन को देखकर सब दुःख भूल गई और उसे खटिया पर बैठाते हुए बोली—

“जीवन बाबू ने क्या लिखा है मेरे लिए ?”

रामधन ने कहा, “उन्होंने कोई चिट्ठी नहीं दी ।”

“नहीं दी, “स्मृति ने दुहराया ।

“नहीं बहूजी, उनमें इतना सामर्थ्य ही कहाँ रह गया है जो किसी को चिट्ठी पत्री लिख पाते ?”

स्मृति का चेहरा फक पड़ गया। अपने को सम्हालती हुई बड़ी कठिनाई से पूछ सकी, “सामर्थ्य नहीं रहा, क्या हो गया है उन्हें ?”

“आप को कुछ भी पता नहीं।”

“नहीं तो, तुम्हीं कहो न।”

“क्या कहूँ बहूजी,” कहकर रामधन की आँखें गीली हो गईं।

स्मृति से न रहा गया, उसने खेदित स्वर में कहा, “रामधन ! मेरी वेदना को मत बढ़ाओ इन गीली आँखों से। जल्दी बताओ, जीवन बाबू को क्या हो गया है ?”

रामधन ने उसी अवस्था में कहा, “क्या बताऊँ बहूजी ? आपके आने के बाद से उन्हें सुख नसीब नहीं हुआ, ज्वर ने उनका पीछा नहीं छोड़ा, खाँसी और बढ़ गई उसके साथ ही, न किसी डाक्टर को आने देते हैं और न किसी वैद्य को, न दवा-दारु की फिक्र करते हैं न पथ्य पानी की। सब कहते कहते हार गये हैं। बस राजीव को देखकर रोते रहते हैं दिन रात।”

“ओह ! दशा इतनी बिगड़ गई।”

“हाँ, बहूजी ! पता नहीं वापस जाकर देख भी सकूँगा या नहीं मुझे तो इसका भी भरोसा नहीं।”

“पहले से मुझे खबर क्यों नहीं दी किसी ने ?”

“सरकार देने ही नहीं देते थे।”

“वे अब भी नाराज हैं मुझ से।”

रामधन चुप रहा।

स्मृति ने फिर कहा, “घबराओ मत रामधन। जीवन बाबू को हमारे बीच से कोई नहीं ले जा सकता ? मुझ में सावित्री से कम शक्ति नहीं है। मैं राजीव को इतनी जल्दी अनाथ नहीं होने दूँगी। जाकर दिखा-ऊँगी भलाऊँगी, कोशिश करूँगी, अवश्य अच्छे हो जायेंगे जीवन बाबू।”

इतना कह कर कुछ देर के लिए स्मृति ने आँखें मूँद लीं और उसके बाद उठकर बोली, “कहाँ चलना होगा ?”

“नैनीताल ।”

“रामधन ! तुम्हारे पास मुझे ले जाने के लिए रुपये हैं ।”

“हैं क्यों नहीं बहूजी ? पूरे सौ रुपये लेकर भेजा है बड़ी बहूजी ने ।”

“तब ठीक है, देर करना ठीक नहीं, अभी कपड़े बदल कर चलती हूँ तुम्हारे साथ, तुम तनिक बैठक में से बड़े मुनीम जी को बुला लाओ ।”

रामधन मुनीमजी को बुलाने को लिए चला गया और स्मृति कपड़े बदलने के लिये चली गई अन्दर । आज का पूजा पाठ वैसे ही रह गया ।

बड़े मुनीमजी ने आँगन में आकर पूछा, “क्या आज्ञा है बहूजी ?”

“मैं आज जा रही हूँ मुनीमजी । मेरे कारण तुम्हें या तुम्हारे नये मालिक को जो कुछ कष्ट पहुँचा हो, उसे भुला देना ।”

“यह आप क्या कह रही हैं बहूजी, हम तो चाकर हैं, कष्ट किस बात का ? पहले रुपये पैसे के लिये हाथ रोका था, अब जाते हुये खुली छुड़ी दे गये हैं, जितना कहें उतना दे दूँ सफर खर्च को ।”

“मैं एक कौड़ी भी नहीं चाहती तुम्हारे मालिक की । जितने दिन अन्न जल बढ़ा था, उतने दिन ले लिया, बस अब जा रही हूँ, जितेन्द्र बाबू आयें तो कह देना उनसे, स्मृति मर गई है उनके लिये, अब कभी नहीं आने की है उनसे कुछ माँगने के लिये, कुछ कहने सुनने के लिये ।”

मुनीम खड़ा देखता रह गया । स्मृति खाली हाथ रामधन के साथ चली गई । इस बार वह अपने साथ अटैची भी नहीं ले गई ।



“तुम आ गई माँ ! पिताजी कहते थे कि तुम कभी नहीं आओगी ।
रूठ कर चल गई थी न । अब तो नहीं जाओगी रूठ कर । पिता जी
रूठे हुये हैं मुझ से । कल से बोलते ही नहीं । बोलेंगे न, बताओ माँ ।”
स्मृति को द्वार पर देखकर राजीव अनुनय स्वर में कह उठा ।

“मेरे बच्चे ! कैसे रूठ कर जाऊँगी तुम्हारे से अब ? जप, तप,
कर्म सभी कुछ तो तुम हो मेरे । मूर्त को छोड़ अमूर्त के पीछे भागने से
ही तुम्हारे पिता नाराज़ हैं, मैं उन्हें राजी कर लूँगी, जरूर बोलेंगे
तुम्हारे से”, इतना कह राजीव का हाथ पकड़ कर आगे बढ़ी स्मृति ।

कारे में पहुँच कर माँ के चरण छुए । स्मृति की विदीर्ण अवस्था
को देखकर, कब के रुके हुए अश्रु माँ की आँखों से बहने लगे । स्मृति
माँ के गले से लिपट कर रोने लगी । कई मास से रुके हुये अश्रुओं ने
बाढ़ की तरह निकल कर मिलन की बाघा की दीवार को गिरा दिया ।
उसने सिसकते हुये पूछा, “मुझे पहले खबर क्यों नहीं दी माँ, क्या तुम्हारे
लिये भी पराई हो गई थी मैं ?”

“पराई समझती तो तेरा आसरा क्यों तकती बेटी ? तू आ गई है,
जीवन को सम्हाल लेगी... परसों तुम्हारे मुख से अपना नाम सुनने के
लिये जीवन की अंतरात्मा कितनी व्याकुल हो रही है ? इसके बाद

उसका कोई भी इच्छा अपूर्ण न रह जायेगी, सारी साध पूरी होगी बेटा ?”

“कौन से कमरे में हैं वे ?”

“आखिर वाले में ।”

स्मृति जाने लगी उस ओर ।

माँ ने आवाज दी, “ऐसे मत जा बेटा उसके पास ।”

“माँ ! क्या कहना चाहती हो ?”

“जो जीवन चाहता है ।”

स्मृति चुपचाप खड़ी हो गई । माँ ने राजीव से कहा, “अपनी तारीफ को बुला ला बेटा ।”

राजीव के साथ ही लक्ष्मी आ गई । स्मृति को देखकर बोलीं, “तुम आ गई स्मृति ! परसों से तुम्हारी प्रतीक्षा में जीवन भैया की आँखें द्वार की ओर लगी हुई हैं ।”

“दीदी ! यह सब क्या हुआ जा रहा है ?”

“कुछ नहीं स्मृति, जीवन दीप में तेल नहीं रहा था फिर भी आशा की बत्ती अपना क्षीण प्रकाश फैलाये हुये है तुम्हारे प्रेम से प्रदीप्त हो उठेगा जीवन दीप ।”

माँ ने कहा, “बहू ! स्मृति को आज वैसे ही सजा दे, जैसे पूर्व बसहरे के दिन यह गहने कपड़े पहन कर मेरे चरण छूने आई थी ।”

“माँ !”

“क्या मुझे अपने पाप से मुक्त नहीं होने देना चाहती ? तेरी सूनी माँग जीवन को खा जायेगी बेटा । तेरे अन्दर भी माँ का हृदय है, तू अच्छी तरह पहचान सकती है उसे । यह तीन वर्ष कैसे काटे हैं जीवन ने । इसे कोई माँ ही समझ सकती है और आज वह मेरे पाप का प्रायश्चित्त करने के लिये अपने जीवन की बाजी लगाये हुये है । किसी की कुछ नहीं सुनता ? न दवा लेता है न पथ्य... ?”

कॉ० और कं० १०

स्मृति चुपचाप लक्ष्मी के साथ दूसरे कमरे में चली गई और माँ की आज्ञा पालन करके फिर आई। उसे देख कर माँ के होठों पर हर्ष की रेखा अंकित हो गई, बोलीं, “तुम्हें मेरी सौगन्ध है स्मृति। इस भेस को तू कभी नहीं छोड़ना। ज्ञात नहीं, किस पाषाण हृदय ने विधवा के लिये ऐसी पोशाक की रचना की थी? किसने उसके लिए शुभ पर्वों में बंधन डाले थे? किसने उसे घुलकर मरने के लिये बाध्य किया था? प्राज्ञ में उन सबको शाप देती हूँ। माँ के सच्चे हृदय का शाप कभी खाली नहीं जाता।”

बाहर जूते की आहट सुनकर स्मृति ने सर पर पल्ला खींच लिया। बाबूजी ने कमरे में प्रवेश कर कहा, “स्मृति तुम...”

“हाँ, मेरी बहू”, माँ गर्वित स्वर में बोल उठी।

स्मृति ने बाबूजी के चरण छुए।

आशीर्वाद स्वरूप उनके मुख से निकला

“सदा सुहागिन रहो।”

“जा बहू, जीवन को देख।”

स्मृति समीर की गति से भी तेज़ चाल से बढ़ गई उस कमरे की ओर, जहाँ जीवन शैया पर पड़ा मृत्यु से लड़ रहा था।

जीवन का शस्त्र बन पहुँची स्मृति।

दिन का अवसान समीप था।

आकाश लोहित हो चला था।

नैनीताल के शीतल जल में कितनी ही तैर रही थीं जीवन तरणियाँ? शुष्क आँखों से निहार रही थी उन्हें जीवन के समीप बैठ कर स्मृति।

समीर के हल्के से झोंके ने स्मृति के सिर से पल्ला खिसका दिया। उसी क्षण जीवन के शरीर में किसी अज्ञात शक्ति का संचार हुआ। जेह्वा को सम्बल मिला, वह खुली, उस में से शब्द मुखरित हुआ, “स्मृति तुम... राजीव कहाँ है?”

“दूसरे कमरे में, बुलाऊँ क्या ?”
 “रहने दो वहीं उसे ।”

फिर बाहर जूतों की आहट सुनाई दी । स्मृति ने सिर पर पल्ला खींच लिया । इतने में डाक्टर दास गुप्ता रमेन्द्र के साथ कमरे के द्वार पर खड़े हुये । उन्हें देखकर मैंने कहा, “रामी भैया ! अब डाक्टर साहब को क्यों कष्ट दिया ? वहीं से विजिट फीस देकर इन्हें विदा कर दो ।”

“आप आये हैं तो जीवन, उन्हें कम से कम एक बार देख ही लेने दो ।”

“नहीं भैया, अब मुझे इनकी सुइयों की जरूरत नहीं रही ।”

पर रमेन्द्र ने एक न सुनी । स्मृति डाक्टर साहब के लिए कुर्सी छोड़कर लक्ष्मी के पास आ गई । डा० दास गुप्ता परीक्षण में लग गये ।

स्मृति ने लक्ष्मी को सम्बोधित कर कहा, “दीदी ! ग़त वर्ष जिस अवस्था में मैं इन्हें छोड़कर गई थी, उस पर किसी पाषाण हृदय को भी दया आ जाती, पर मुझे नहीं आई ? जीवन की उदासीनता ने मेरे हृदय को पाषाण से भी ज़्यादा सख्त कर दिया था ? क्या उस उदासीनता के विकराल हाथ मेरे जीवन दीपक को तो न...” कह कर रो उठी स्मृति ।

“ऐसी अशुभ बात मुख से नहीं निकाला करते पगली । जीवन भैया अवश्य स्वस्थ हो जायेंगे पर...”

“पर क्या दीदी ?”

“कभी किसी दिन भी स्मृति उनकी बात को मत टालना और न कभी विगत बातों को दोहरा कर दुःख पहुँचाना । जो इंसान अपनी भूलों का स्वयं प्रायश्चित्त कर लेता है, उसके हृदय की व्यथा से स्वयं ईश्वर को भी कष्ट पहुँचता है । इस प्रायश्चित्त के पीछे जीवन भैया ने अनगिणत आपदाओं को भेला है ।”

तभी राजीव ने आकर कहा, “माँ ! पिता जी बुला रहे हैं।”

स्मृति उठकर चलने लगी, लक्ष्मी ने कहा, “मेरी बात को याद रखना बहन।”

स्मृति ने जीवन के कमरे में जाकर देखा। वह दीवार की ओर मुँह किए हुए लेटे थे, जाग रहे हैं, या सो गये, कुछ समझ न सकी वह। सिरहाने बैठकर उसने माथे पर हाथ फेरा।

मैंने उसके हाथ को हटाते हुए पूछा, “मेरे अन्तिम दर्शन की कैसे इच्छा हो गई स्मृति ?”

मेरे इस कथन के उपरांत ही उसके चेहरे का रंग बदल गया। ऐसी लगने लगी मानो किसी संन्यासी के शाप से शापित कुछ पल में ही पाषाण प्रतिमा बन गई हो।

मैंने सहमते हुए बुलाया, “स्मृति।”

उसने कोई उत्तर नहीं दिया, हिली डुली भी नहीं, एक टक धरा की ओर निहारती हुई बैठी रही।

मैंने व्याकुल होकर बुलाया, “स्मृति।”

उसने उसके उत्तर में गहरी सांस ली, फिर यथा पूर्वक बैठी रही।

कुछ क्षणों के उपरांत बोली वह, “विधाता से दंडित नारी को आप भी दंड देंगे, ऐसा मैंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था।”

“तुम्हें दंड क्या दूंगा स्मृति ? तुमने मुझे प्यार किया था। राजीव उस प्यार की कली बन कर विकसित हुआ। इसलिए अब तक मैं अपने को भी दंडित नहीं कर सका।” इतना कह कर मैं चुप हो गया। बोलने से थकान काफी हो गई थी। आँखें बन्द कर ली मैंने।

स्मृति को ऐसा प्रतीत होने लगा मानो उसका हृदय विदीर्ण होता जा रहा है। उसकी आँखें पथराने लगी हैं और उसकी निष्क्रिय देह अगाध अथाह सागर की उत्ताल तरंगों के बीच आई भँवर में फँस गई है।

ससने सिरहाने से उठकर जीवन के ठंडे पैरों पर सिर रख दिया ।
 स्रावन के गगन भरे मेघों की भाँति स्याम केशों ने उसके पैरों को ठक
 लिया और वह अपने गरम अश्रु जल से सींचकर उन्हें गरम करने की
 चेष्टा करने लगी । यही उसकी सारी आशाओं और कुल आकांक्षाओं की
 समाधि थी।

◆◆◆◆

